दादा भगवान कथित

सहजता



प्राकृत सहज ⟶ असहज ⟶ पूर्ण सहज

दादा भगवान प्ररूपित

सहजता

स्वरूपज्ञान के साक्षात्कार प्राप्त किए हुए
अक्रम मार्ग के महात्माओं के लिए
केवलज्ञान की श्रेणियाँ चढ़ाने वाला ग्रंथ

मूल गुजराती संकलन : पूज्य दीपक भाई देसाई

अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
दादा भगवान विज्ञान फाउन्डेशन
1, वरूण अपार्टमेन्ट, 37, श्रीमाली सोसायटी,
नवरंगपुरा पुलिस स्टेशन के सामने,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद - 380009,
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2100

प्रथम संस्करण : 2000, प्रतियाँ, नवम्बर, 2018

भाव मूल्य : 'परम विनय' और 'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 50 रुपए

मुद्रक : अंबा मल्टीप्रिन्ट
B-99, इलेक्ट्रॉनिक्स GIDC,
क-6 रोड, सेक्टर-25,
गांधीनगर-382044.
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2142

त्रिमंत्र





नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद





'दादा भगवान' कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षुजनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट।

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, वे तो 'ए.एम.पटेल' हैं। हम ज्ञानीपुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दु:खों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार(सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
54. आप्तवाणी - 14 (भाग-1)
55. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)

(सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध)

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट **www.dadabhagwan.org** पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

समर्पण

अहो, कलिकाल, में अद्भुत आश्चर्य सर्जित हुए,
ज्ञानी कृपा से, स्वरूप के लक्ष प्राप्त हुए।

आत्मा-अनात्मा के, सिद्धांतिक विवरण समझ में आए,
आत्मज्योत के प्रकाश से, मोक्ष की ओर कदम बढ़ाए।

प्रकृति से अलग होकर, पुरुष पद में स्थिर हुए,
प्रतिष्ठा बंद हुई, 'प्रतिष्ठित' के ज्ञाता बने।

निज अप्रयास से, मन-वाणी-काया को अलग देखा,
अहम्-बुद्धि के विलय होने से डखोडखल बंद हुए।

'व्यवस्थित' के उदय से, डिस्चार्ज के ज्ञाता रहे,
प्रकृति के सहज होने पर, निरालंब खुद हुए।

सहज 'इस' अनुभव से, 'सहज' का मर्म समझ में आया,
'सर्वज्ञ' स्वरूप 'इस' ज्ञानी को, सहज रूप से पहचाना।

ज्ञानी की सहज वाणी से, शास्त्र रचे गए,
कैसी करुणा जगकल्याणी! सहज रूप से समर्पित हुए।

प्रस्तावना

परम पूज्य दादाश्री की ज्ञानवाणी का संकलन अर्थात् व्यवस्थित शक्ति से संयोगों द्वारा निमित्तों की संकलना का परिणाम। ज्ञानीपुरुष परम पूज्य दादाश्री को अनंत जन्मों के परिभ्रमण से हुए अनेक अनुभव उनकी निर्मोही दशा की वजह से उन्हें तादृश बर्तते थे। उनका इस जन्म में, निमित्त के अधीन सहज ज्ञानवाणी के निकलने से आत्मा और अनात्मा के जोड़ पर के गुह्य रहस्यों के सूक्ष्म स्पष्टीकरण मिलते गए। पूज्य नीरू माँ ने इस संसार पर असीम कृपा की, कि परम पूज्य दादाश्री के एक-एक शब्द को टेपरिकॉर्डर के द्वारा संग्रहित (रिकॉर्ड) किया।

पूज्य नीरू माँ ने दादाश्री की वाणी का संकलन करके चौदह आप्तवाणियाँ तथा प्रतिक्रमण, वाणी का सिद्धांत, माँ-बाप बच्चों का व्यवहार, पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार, आप्तसूत्र, हिन्दी आप्तवाणी, निजदोष दर्शन से निर्दोष, पैसों का व्यवहार और समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य और साथ ही उनके संक्षिप्त, अनेक पुस्तकें बनाई। और अब, उनकी स्थूल देह की अनुपस्थिति में यह जवाबदारी आ गई है लेकिन बहुत से ब्रह्मचारी भाई-बहनों तथा सेवार्थी महात्मागण के आधार से पुस्तकों के लिए इस वाणी के संकलन की प्रक्रियाएँ आगे चल रही हैं।

जैसे कारखाने में सब सामान इकट्ठा होकर फाइनल प्रोडक्ट बनाता है, उसी प्रकार से इस ज्ञानवाणी के कारखाने में दादा की ज्ञानवाणी की पुस्तकें बनती हैं। बहुत से महात्माओं की गुप्त मौन सेवा से, दादाश्री की वाणी कैसेट में से लिखी जाती है। वाणी लिखने के बाद उसकी चेकिंग होती है और फिर रिचेकिंग करके, वाणी की शुद्धता को ज्यों का त्यों बनाए रखने का पूर्ण प्रयास किया जाता है। फिर सब्जेक्ट के अनुसार कलेक्शन होता है, फिर उस कलेक्शन का विविध प्रकार के दृष्टिकोण वाली बातों में विभाजन होता है। परम पूज्य दादाश्री का सत्संग एक ही व्यक्ति के साथ चल रहा हो, वैसे भावपूर्वक अज्ञान से, ज्ञान और केवलज्ञान तक के सभी जोड़ों का पूर्ण स्पष्टीकरण करती वाणी का संकलन होता है। अंत में प्रूफ रीडिंग होकर प्रिंटिंग होती है। इसमें सूक्ष्म

में परम पूज्य दादाश्री की कृपा, पूज्य नीरू माँ के आशीर्वाद, देव-देवियों की सहायता से और हर एक डिपार्टमेन्ट में अनेक महात्मागण की सेवा के निमित्त से, अंत में यह पुस्तक आपके हाथ में आ रही है।

दादाश्री ने अनेक महात्माओं और मुमुक्षुओं के साथ बीस साल में बहुत से सत्संग किए हैं, उनमें से कितने ही टुकड़ों को इस तरह से संकलित करने का प्रयास किया गया है कि मानों यह सत्संग एक ही व्यक्ति के साथ हो रहा है।

जैसे एक फिल्म के लिए प्रोड्यूसर-डायरेक्टर अलग-अलग क्लिपें बनाता है, एक कलाकार के जीवन में बचपन, विवाह और मृत्यु कश्मीर में होता है तो वह एक साथ उसकी पूरी फिल्म बना लेता है, फिर स्कूल, जवानी और व्यापार वगैरह दिल्ली में होता है, घूमने के लिए पेरिस, स्विट्ज़रलैंड गया हो, इस प्रकार अनेक क्लिप होती हैं लेकिन उसके बाद एडिटिंग होकर, हमें बचपन से लेकर मृत्यु तक के सीन (दृश्य) देखने मिलते हैं। इसी प्रकार दादाश्री की वाणी में एक सब्जेक्ट के लिए बिगिनिंग से एन्ड (शुरुआत से अंत) तक की सभी बातें मिलती है। अलग-अलग निमित्तों द्वारा, अलग समय में, अलग क्षेत्र में निकली हुई वाणी, एडिटिंग (संकलित) होकर अब हमें यहाँ पुस्तक के रूप में मिलती हैं। आत्मा और अनात्मा के जोड़ (संधि) पर रहकर पूरा सिद्धांत खुला किया है। हम इस वाणी को पढ़ेंगे, स्टडी करेंगे जिससे कि उन्होंने जो अनुभव किए, वही हमें समझ में आए और अंत में अनुभव में आए।

- दीपक भाई देसाई

संपादकीय

श्रीमद् राजचंद्र (कृपालुदेव) ने कहा है कि जीवन की सहज स्थिति होने को ही श्री वीतराग भगवान ने मोक्ष कहा है। ऐसी स्थिति प्राप्त करनी है, जिसके लिए लोगों ने अथक प्रयत्न किए हैं। जैसे कि मुझे कर्म खपाने हैं, मुझे कषाय निकालने हैं, मुझे राग-द्वेष निकालने हैं, मुझे त्याग करना है, मुझे तप करना है, ध्यान करना है, उपवास करना है और वह मार्ग भी गलत नहीं है लेकिन जब तीर्थंकर भगवान हाज़िर रहते हैं तब उनके अधीन घर, व्यवहार, सब परिग्रह छोड़कर लोग भगवान की शरण में पहुँच जाते थे और भगवान की आज्ञा का आराधन करके केवल ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में चले जाते थे।

क्रमिक मार्ग का रिवाज़ ही है कि जितने परिग्रह छोड़ते जाओगे उतनी ममता छूटती है, कषाय छूटते हैं, वैसे करते-करते क्रोध-मान-माया-लोभ को खत्म करते-करते, जब अहंकार में क्रोध-मान-माया-लोभ का एक भी परमाणु नहीं रहता तब वह शुद्ध अहंकार केवल आत्मा में अभेद होकर पूर्णता प्राप्त करता है। वह चौथे आरे में (संभव) हो जाता था।

परम पूज्य दादाश्री ने ऐसी खोज की, कि इस काल में मन-वचन-काया का एकात्म योग खत्म हो गया है। बाह्य द्रव्य और अंतर भाव की एकता टूट गई है। तो इस काल में राग-द्वेष, कषायों को निकालते-निकालते खुद का दम निकल जाता है। तो अन्य क्या उपाय है? मूल आत्मा सहज है, शुद्ध ही है, अज्ञानता की वजह से यह व्यवहार आत्मा असहज हो गया है। जिससे प्रकृति, मन-वचन-काया असहज हो गए हैं। इसलिए व्यवहार आत्मा को ऐसा शुद्ध स्वरूप का ज्ञान दो जिससे वह खुद सहज हो जाए। उसके बाद प्रकृति को सहज करने के लिए पाँच आज्ञा दी, आज्ञा में रहने से धीरे-धीरे प्रकृति सहज होती जाएगी।

जैसे कि तालाब में पानी स्थिर हो और यदि उसमें एक पत्थर डालें तो पानी में तरंगें उठने से उसमें हलचल हो जाएगी। अब यदि पानी को स्थिर करना हो तो क्या करना पड़ेगा? फिर से पत्थर डालेंगे

तो जल्दी स्थिर हो जाएगा? पानी को, सभी को पकड़ना पड़ेगा? नहीं! कुछ भी नहीं करने से वह स्थिर हो जाएगा, तो खुद को क्या करना है? देखते रहना है, तो ऑटोमेटिक स्थिर हो ही जाएगा।

कुदरत का नियम है, खुद एक ही बार गेंद फेंकता है, उसके पच्चीस गुना, पचास गुना और सौ गुना रिबाउन्स होकर गेंद के टप्पे पड़ते हैं। उसमें खुद उलझन में पड़ जाता है और जैसे ही गेंद को पकड़कर स्थिर करने जाएगा वैसे-वैसे गेंद और अधिक उछलेगी, स्थिर नहीं होगी। तो उसका उपाय क्या है? क्या होता है उसे देखते रहो। गेंद को स्थिर करने का प्रयत्न भी नहीं करना है। तो वह अपने आप थोड़े टप्पे पड़ने के बाद फिर खुद ही स्थिर हो जाएगी। इसी तरह से परम पूज्य दादाश्री की अद्‌भुत खोज है कि प्रकृति की असहजता का मूल कारण खुद की अज्ञानता है। अज्ञानता से प्रकृति में दखलंदाज़ी होने से, प्रकृति की असहजता हो गई है। अब इसमें से सहज होने का क्या उपाय है?

पहले खुद ज्ञान प्राप्त कर लें तो नए स्पंदन बंद हो जाएँगे। पहले खुद सहजात्मा हो जाएगा। फिर धीरे-धीरे प्रकृति सहज हो जाएगी। दादाश्री ज्ञान के बाद पाँच आज्ञा ऐसी देते हैं कि जिनका पालन करने से प्रकृति में दखल होना बंद हो जाता है और खुद का ज्ञाता-दृष्टा पद शुरू हो जाता है। अंत में खुद के कम्प्लीट ज्ञान में रहने से इस तरफ प्रकृति संपूर्ण रूप से सहज होती जाती है और यदि दोनों सहज हो गए तो पूर्ण दशा की प्राप्ति हो जाएगी।

सहजात्म स्वरूप परम गुरु ऐसे कारुण्यमूर्ति परम पूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से सहज निकली इस प्रत्यक्ष सरस्वती को यहाँ 'सहजता' ग्रंथ में संकलित किया गया है।

प्रस्तुत संकलन में, शुद्धात्मा पद में स्थित होने के बाद अप्रयत्न दशा में रहकर, पुरुषार्थ करके पूर्ण दशा प्राप्त करने तक के सोपानों का वर्णन दादाश्री की ज्ञानवाणी में खुला हुआ है। महात्माओं को तो अंतिम दशा का चित्र समझ लेना है और जीवन के अंतिम ध्येय के रूप में लक्ष (जागृति) में रखना है, कि कभी न कभी ऐसी सहज, अप्रयत्न दशा

प्राप्त हो, उसके बगैर पूर्णाहुति नहीं होगी। तब तक प्रगति के लिए ज्ञानी का ज्ञान और आज्ञा की आराधना से आगे की प्रगति होती रहेगी।

अनेक मुमुक्षुओं और महात्माओं के साथ वर्षों से अलग-अलग क्षेत्र में निमित्त के अधीन निकली हुई वाणी को यहाँ पर एक समान संकलित करके अखंड बनाने के प्रयास हुए हैं। सुज्ञ पाठक को यदि कहीं कुछ कमी लगे तो वह संकलन की गलती के कारण है, क्योंकि ज्ञानीपुरुष की अविरोधाभास, स्याद्वाद वाणी, सहजता की पूर्ण दशा में रहकर निकली हुई, मालिकी बगैर की वाणी है, इसलिए उसमें किसी भी प्रकार की गलती हो ही नहीं सकती।

– **दीपक देसाई**

उपोद्घात

[1] सहज 'लक्ष' स्वरूप का, अक्रम द्वारा

'सहजात्म स्वरूप परम गुरु' ऐसे ज्ञानीपुरुष दादाश्री की कृपा से दो घंटे में 'यह' आत्मज्ञान मिलने के बाद 'खुद' सम्यक् दृष्टि वाला हुआ। पहले 'खुद' मिथ्या दृष्टि वाला था। ज्ञानी जब इन रोंग बिलीफों (मिथ्या दृष्टि) को फ्रेक्चर कर देते हैं, तब राइट बिलीफ बैठ जाती है। राइट बिलीफ अर्थात् सम्यक् दर्शन। इसलिए फिर 'मैं चंदूभाई नहीं, मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसी बिलीफ बैठ जाती है, फिर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का ध्यान अपने आप ही आता है, वह सहज कहलाता है। इसमें 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह रटन या स्मरण नहीं है। वह तो अंश अनुभव है। जो अक्रम द्वारा सहज रूप से प्राप्त होता है।

जैसे-जैसे जागृति बढ़ती जाती है, उसके बाद पूरी बात समझनी पड़ती है। फिर ज्ञानी के परिचय में रहकर, ज्ञान समझ लेना है। जैसे-जैसे प्रगति करोगे वैसे-वैसे अनुभव बढ़ता जाएगा।

ज्ञानी की आज्ञा में रहने का पुरुषार्थ करना है और यदि नहीं रह पाए तो भीतर खेद रखना है कि ऐसे कैसे कर्म के उदय लेकर आए हैं कि जो हमें शांति से नहीं बैठने देते। खुद का दृढ़ निश्चय और आज्ञापालन का अभ्यास, उसकी प्रगति करवाएगा। यह रिलेटिव और रियल देखने का अभ्यास, पाँच-सात दिन तक करने से वह देखना सहज हो जाएगा।

अब, प्रश्न यह उठता है कि एक तरफ तो दादा कहते हैं कि आपको आपका सहज स्वरूप प्राप्त हो गया है, अब अभ्यास या रटन करने की ज़रूरत नहीं है और दूसरी तरफ ऐसा कहते हैं कि सामने वाले को शुद्धात्मा देखने का थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करो, फिर सहज हो जाएगा। देखने में तो ये दोनों बातें विरोधाभास लगती हैं लेकिन नहीं! दोनों बातें अपनी जगह पर योग्य ही हैं। जब स्वरूप के लक्ष के लिए ज्ञान दिया जाता है तब कृपा से ही सहज प्रतीति बैठ जाती है। जिसे यदि खुद जान-बूझकर नहीं उखाड़ेगा तो मोक्ष में जाने तक वह सहज प्रतीति नहीं जाएगी। जब व्यवहार में सामने वाले को शुद्धात्मा रूप से देखने का समय आता है तब भरा हुआ माल बीच में आ जाता है इसलिए अभ्यास की ज़रूरत पड़ती है।

पहले अज्ञानता थी, इसलिए 'यह मैंने किया और यह मैंने जाना' ऐसे खुद कर्ता और दृष्टा दोनों बन जाता था, अतः असहज था। ज्ञान लेने के बाद सहज होने की शुरुआत हो जाती है।

यह कृपा से जो प्राप्त हुआ, वह शुद्धात्मा पद है, जब वह प्राप्त हुआ तभी से मोक्ष होने की मुहर लग गई। अब यदि ज्ञानी की आज्ञा का पालन करेंगे तो धीरे-धीरे निरालंब होकर रहेंगे।

ज्ञान प्राप्ति के बाद, आत्म दर्शन होने के बाद, निरालंब की तैयारियाँ होती रहती हैं, अवलंबन कम होते जाते हैं। महात्माओं को यह बात जान लेनी चाहिए कि यदि ज्ञान में बहुत ऊँची दशा रहती हो... उदाहरण के तौर पर निरंतर शुद्धात्मा का लक्ष सहज रूप से रहता हो, व्यवहार में चिंता व क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं होते हो, तो भी वह मूल आत्मा तक पहुँचने वाली दशा नहीं है। यह शुद्धात्मा, वह शब्दावलंबन है। मोक्ष के पहले दरवाज़े में घुस गए हैं। मोक्ष होगा ही, उसमें दो मत नहीं है लेकिन जो निरालंब मूल आत्मा प्राप्त करना है विज्ञान स्वरूप पद, वह अभी भी आगे के ध्येय के रूप में लक्ष में रखना है। इन पाँच आज्ञा के पालन से शब्दावलंबन धीरे-धीरे छूटता जाएगा और मूल 'केवलज्ञान स्वरूप' दर्शन में आता जाएगा। वह आते-आते, खुद के सेल्फ में ही अनुभव रहा करेगा, वह अंतिम दशा है। दादाश्री खुद इस काल में ऐसी मुक्त दशा में रहते थे!

[2] अज्ञ सहज - प्रज्ञ सहज

जितना सहज होता है उतना ऐश्वर्य प्रकट होता है।

ये जानवर, पशु-पक्षी सभी सहज हैं, बालक भी सहज है और यहाँ की स्त्रियों के बजाय फॉरेन वाले (इसमें कोई अपवाद हो सकता है) ज़्यादा सहज हैं। क्योंकि उनके क्रोध-मान-माया-लोभ फुल्ली डेवेलप नहीं हुए हैं। इसलिए उनकी सहजता अज्ञानता के कारण है। अज्ञ सहज अर्थात् जो प्रकृति स्वभाव है उसमें ही तन्मयाकार रहना, दखल नहीं करना, वह।

प्राकृतिक डेवेलपमेन्ट में अथवा अज्ञानता में प्रकृति एकदम सहज लगती है, कोई बैर भाव नहीं, दखल नहीं, संग्रह करने की वृत्ति नहीं,

जैसा है वैसा बोल देते हैं, मानो कि आत्मज्ञानी के जैसा सरल व्यवहार हो वैसा ही लगता है। फिर भी वह पूर्णाहुति नहीं है। शुरुआत में नियम से प्रकृति सहज में से असहज होती है। एक-एक पुद्गल परमाणुओं का अनुभव करता है, फिर वही वापस ज्ञानी के पास से या तीर्थंकर के पास से आत्मज्ञान प्राप्त करता है और खुद की असहजता को खाली करते-करते संपूर्ण रूप से सहज हो जाता है और फिर मोक्ष चला जाता है।

यह प्राकृत सहज ऐसी चीज़ है कि जिसमें बिल्कुल भी जागृति नहीं रहती। भीतर से जो उदय में आया उसके अनुसार व्यवहार करना, उसे सहज कहते हैं।

प्राणियों में और बालक में लिमिटेड बुद्धि होती है, वहाँ सहज स्वभाव होता है और ज्ञानी की तो बुद्धि ही खत्म हो गई होती है, इसलिए ज्ञानी तो बिल्कुल सहज होते हैं।

यह अज्ञानता में सहज है, उसमें से जैसे-जैसे क्रोध-मान-माया-लोभ बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे ज़्यादा असहज होते जाते हैं। असहजता में टॉप पर जाने के बाद जलन को पूरी तरह से देखता है, अनुभव करता है, उसके बाद निश्चित करता है कि पैसे में सुख नहीं है, स्त्री में सुख नहीं है, बच्चों में सुख नहीं है, इसलिए अब यहाँ से भागो, ऐसी जगह पर जहाँ कुछ मुक्त होने की जगह है, वहाँ। तीर्थंकर मुक्त हुए, उस रास्ते पर चलो। यह संसार अब नहीं पुसाता, फिर मोक्ष जाने का भाव हो जाता है।

[3] असहज का मूल गुनहगार कौन?

मूल आत्मा सहज ही है। आत्मज्ञान की प्राप्ति के बाद यदि खुद इस ज्ञान में रहेगा तो प्रकृति सहज ही होती जाएगी। स्थूल प्रकृति राग-द्वेष वाली है ही नहीं, वह तो पूरण-गलन (चार्ज-डिस्चार्ज) स्वभाव की है। यह तो अज्ञानता से अहंकार उत्पन्न हुआ है और वह अहंकार, 'पसंद' वाली चीज़ पर राग करता है और 'नापसंद' वाली चीज़ पर द्वेष करता है, जिससे प्रकृति असहज हो जाती है। ज्ञान मिलने से प्रकृति अलग हो गई लेकिन डिस्चार्ज रूप से रही है उसे व्यवस्थित के ताबे में है ऐसा कहा जाएगा।

जो मूल आत्मा है वह निश्चय आत्मा शुद्ध ही है। संयोगों के दबाव

से अज्ञानता में जो विभाव उत्पन्न हुआ, 'मैं चंदू हूँ' वह व्यवहार आत्मा है। वह प्रतिष्ठा करता है कि 'यह मैं हूँ, मैं करता हूँ', उस भाव से अगले जन्म का प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होता है। इस व्यवहार आत्मा को ज्ञानविधि में भान हुआ कि 'मैं चंदू नहीं लेकिन मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं कर्ता नहीं हूँ, व्यवस्थित कर्ता है'। तभी से जीवित अहंकार चला गया। अब सिर्फ, मृत अहंकार रहा। पूर्व में अज्ञानता से चार्ज किया था, वह आज 'चंदू' स्वरूप से डिस्चार्ज हो रहा है, वह निश्चेतन चेतन है, वही आज का प्रतिष्ठित आत्मा है, उसका निकाल (निपटारा) करना है। व्यवहार आत्मा में अंश जागृति उत्पन्न हुई, फिर भी अभी जो अजागृति है, जो मृत अहंकार के रूप में है, वह डिस्चार्ज प्रतिष्ठित आत्मा में तन्मयाकार हो जाता है। अब यदि पाँच आज्ञा की जागृति रखेंगे तो व्यवहार आत्मा तन्मयाकार नहीं होगा। डिस्चार्ज प्रतिष्ठित आत्मा अपने आप सहज रूप से मुक्त हो जाएगा, गलन (डिस्चार्ज होना) हो जाएगा। अब यदि प्रज्ञा में बैठकर प्रतिष्ठित आत्मा की दखलंदाज़ी को देखते रहेंगे, तो फिर देह भी मुक्त और आत्मा भी मुक्त।

शुद्धात्मा के अलावा अन्य कौन सा भाग रहा? चंदू और चंदू की प्रकृति रही। चंदू की प्रकृति जो भी करती हो उसमें हमें ऐसा नहीं कहना है कि 'तू जोश से कर या तू नहीं करना'। यदि हम ज्ञाता-दृष्टा रहेंगे तो प्रकृति खाली होगी। ऐसे ब्रेक मारेंगे या तो पकड़ रखेंगे कि 'हम से नहीं होगा' तो भी सब असहज हो जाएगा। वहाँ पर अगर आग्रह नहीं करेंगे तो सहज हो जाएगा। अत: प्रकृति की क्रिया डिस्चार्ज है जो सहज रूप से हो रही है, उसमें खुद 'राग-द्वेष से, करना है, नहीं करना है, अच्छा है, खराब है', ऐसे दखल करता है, उससे प्रकृति असहज होती है। यदि 'देखने वाले' रहो तो प्रकृति का अच्छा-खराब होता ही नहीं, 'देखने वाला' हुआ इसलिए ज्ञानी हुआ।

प्रकृति के उदय में चंदू भाई तन्मयाकार रहेंगे, उसे हमें जानना है। उससे प्रकृति के नुकसान की भरपाई अपने आप ही हो जाएगी। अभी, कभी-कभी अजागृति से दखल हो जाता है, उसे प्रज्ञा में बैठकर जानना है कि यह असहज हुआ, तो धीरे-धीरे अंत में सहज होता जाएगा।

यदि प्रकृति सहज हो जाए तो बाहर का भाग भी लोगों को भगवान जैसा दिखाई देता है। सहज क्षमा, नम्रता, सरलता, संतोष, किसी भी

प्रकार की बाहर की किसी भी चीज़ का असर नहीं, पोतापणुं नहीं रहता, ऐसे गुण उत्पन्न हो जाते हैं।

[4] आज्ञा का पुरुषार्थ, बनाता है सहज

ज्ञान मिलने के बाद लक्ष निरंतर रहता है, वह सहज आत्मा हो गया कहा जाता है। अब मन-वचन-काया सहज करने के लिए, जैसे-जैसे आज्ञा का पालन होता जाएगा वैसे-वैसे मन-वचन-काया सहज होते जाएँगे। ये जो पाँच आज्ञा हैं, वे सहज बनाने वाली हैं। क्योंकि जितना आज्ञा में रहा उतना खुद का दखल खत्म हो गया और तभी से प्रकृति सहज होने लगती है।

यह चंदूभाई अलग और आप शुद्धात्मा अलग हो वह जागृति रहनी चाहिए। खुद शुद्धात्मा में रहे और सामने वाले को भी शुद्ध रूप से देखे, वह शुद्ध उपयोग रखा कहलाता है।

घर के व्यक्तियों में अगर 'शुद्धात्मा' देखेंगे तो उसका असर होगा और दृष्टि में ऐसा रखेंगे कि यह तो ऐसा है, वैसा है तो उसका अलग असर होगा।

स्टेशन जाने पर पता चलता है कि गाड़ी लेट है, थोड़ी देर बाद पता चलता है कि अभी और आधा घंटा लेट है, तब प्रकृति अज्ञानता के आधार से उछल-कूद करती है। ज्ञान के आधार से उसे सहज में लाना है। यदि गाड़ी लेट है तो वह व्यवस्थित है। जितना आज्ञा में रहा उतना खुद का दखल चला गया, इसलिए प्रकृति सहज होती जाती है अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा रह सकते हैं।

उसके बाद फाइल नं-2 या दूसरी अन्य फाइलों के साथ झगड़े हुए हों या झंझट हुई हो तो उनका भी समभाव से निकाल कर देते हैं लेकिन फाइल नं-1 का समभाव से निकाल करना बाकी रहा है। अहंकार से उसे असहज कर दिया है। किसी सभा में बैठा हो और यदि पेशाब करने जाना हो तो दो घंटे तक नहीं जाता, होटल में खाने बैठा हो और खाना स्वादिष्ट हो तो ज़्यादा खा लेता है, सोने का टाइम हो गया हो और कोई अच्छी किताब मिल गई तो पढ़ता ही रहता है, नाटक देखने गया हो और देह को नींद आती हो तो भी ज़बरदस्ती जागकर देखता है, नींद को अब्स्ट्रैक्ट करता (रोकता) है। देह

को अनियमित कर रखा है इसलिए असहज हो गया है। अब, इस फाइल नं-1 का समभाव से निकाल (निपटारा) करके वापस उसे सहज करना है।

आज्ञा पालन का फ्लाई व्हील 181 डिग्री तक घूमने के बाद वह अपने आप खुद के बल से ही घूमता रहेगा, तब तक ही ज़ोर लगाना है। उसके बाद बोझ हल्का होता जाएगा, सहज होता जाएगा।

ये पाँच आज्ञा पूरे वर्ल्ड के सभी शास्त्रों का अर्क है। पाँच आज्ञा का पालन करने को ही पुरुषार्थ कहते हैं। सही पुरुषार्थ क्या है? तब कहते हैं ज्ञाता-दृष्टा रहना, वह। पहले आज्ञा रूपी पुरुषार्थ, उसके बाद उसमें से स्वाभाविक पुरुषार्थ उत्पन्न होता है इसलिए खुद सहज स्वभाव में बगैर आज्ञा के रह सकता है, सहज समाधि निरंतर रहती है।

[5] त्रिकरण इस तरह से होता जाता है सहज

साहजिक अर्थात् मन-वचन-काया की जो क्रिया हो रही है, उसमें दखल नहीं करना। मन के धर्म में या किसी और में दखल नहीं करे। मन-वचन-काया काम करते रहे, उनका निरीक्षण करते रहना।

साहजिक मन, वाणी और काया वाले का प्रत्येक कार्य सरल होता है।

शरीर, मन, वाणी की जितनी निरोगिता उतनी आत्मा की सहजता। मन-वचन-काया अपने आप डिस्चार्ज होते रहते हैं। उनमें यदि खुद एकाकार हो जाएगा तब रोग उत्पन्न होता है। भले ही भरा हुआ माल उल्टा-सीधा, सही-गलत निकले, उसमें तन्मयाकार नहीं होना है। उसे मात्र देखते रहना है तो वह खाली होता जाएगा।

संसार अपने आप सहज रूप से चलता रहता है। बुद्धि-अहंकार प्रिकॉशन लेने जाते हैं वह एक प्रकार की चंचलता है। वर्ना, अपने आप सबकुछ हो ही जाता है। मात्र उसे देखते ही रहना है कि क्या होता है!

विचार करना, वह मन का धर्म है। हमें विचारों से दूर रहकर देखने की ज़रूरत है।

विचारों को देखने वाला आत्मा है। आत्मा खुद नहीं देखता लेकिन

वास्तव में तो अपनी जो प्रज्ञा शक्ति है, वह देखती है। जब तक निरालंब नहीं हो जाता तब तक प्रज्ञा फुल (संपूर्ण) काम नहीं करती। जैसे-जैसे विचारों को ज्ञेय बनाते जाओगे वैसे-वैसे ज्ञाता पद मज़बूत होता जाएगा। विचारों को ज्ञेय रूप से देखना, वह शुद्धात्मा का विटामिन है। हम शुद्धात्मा बन गए इसलिए मन के साथ कोई लेन-देन ही नहीं रहा। ज्ञाता-दृष्टा पद हो गया तो मन वश हो गया कहलाता है।

यह ज्ञान मन को वश में ही करने वाला है। इससे बाद में लोगों का मन आपके वश में होता जाएगा। मन वश होना अर्थात् क्या कि हम जो कहे उसी अनुसार उनका मन एडजस्ट ही होता जाता है।

वाणी, वह टेपरिकॉर्डर है, वह साहजिक चीज़ है। साहजिकपन के लिए खुद ज्ञाता-दृष्टा रहे तो साहजिकपन आएगा। जो कर्ता है उसे कर्ता रहने दो और जो ज्ञाता है उसे ज्ञाता बनने दो। जैसा है वैसा होने दो तो सबकुछ ठीक हो जाएगा। इस ज्ञान का निचोड़ ही यह है।

आत्मा, आत्मा का फर्ज़ बजाए, चंदूभाई, चंदूभाई का फर्ज़ बजाए, दोनों का ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध रहना चाहिए। पाँच इन्द्रियों के धर्म को जानते रहना है और तभी मन की, वाणी की और शरीर की सहजता आती जाएगी। जब ऐसी सहजता आ जाएगी तब पूर्णाहुति कहलाएगी।

देह सहज हो गया, उसका मापदंड क्या है? तब कहते हैं, यदि देह को कोई कुछ भी करे तो भी हमें राग-द्वेष उत्पन्न न हो। सहज अर्थात् स्वाभाविक। इसमें विभाविक दशा नहीं है, खुद 'मैं हूँ' ऐसा भान नहीं है। ज्ञानियों की भाषा में यदि देह सहज हो जाए तो देहाध्यास चला गया। उदय आया उतना ही करे। पोतापणुं (मेरापन) नहीं रखे। जबकि लोगों का तो अभी पोतापणुं कैसा है कि प्रकृति का रक्षण तो करते हैं, बल्कि उल्टा अटैक भी करते हैं। प्रकृति का रक्षण करना, वही पोतापणुं है। उसका रक्षण करने से ही सहज नहीं हो पाता।

अर्थात् अब मूल चीज़ को प्राप्त करने के बाद अहंकार का रस खींच लेना है। अपमान किसी को भी पसंद नहीं है लेकिन वह तो बहुत हेल्पिंग है।

अर्थात् यदि सहज होना हो तो डिस्चार्ज क्रोध-मान-माया-लोभ, अहंकार का रक्षण नहीं करना। भरा हुआ माल तो पसंद वाला भी निकलेगा और नापसंद वाला भी निकलेगा, यदि उसे हम 'देखेंगे' तो हम सहज होंगे। जब प्रकृति सहज होगी, दोनों सहज हो जाएँगे तब हल आ जाएगा।

[6] अंत:करण में दखल किसकी?

बुद्धि संसार में चंचल बनाती है, शंका करवाती है। जबकि ज्ञान से 'व्यवस्थित है' ऐसे या फिर जागृति रहे तो सहज रह सकता है। यदि ज्ञान से बुद्धि को बाजू में बिठाए तो सहज सुख बरतता है।

यह मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार ये चारों ही अंत:करण के रूप में हैं, व्यवहार में उसका हर्ज नहीं लेकिन ज़रूरत से ज़्यादा जो एक्स्ट्रा बुद्धि है उसका दखल है। पोतापणुं के सूक्ष्मतर अहंकार के साथ जो बुद्धि है वह एक्स्ट्रा बुद्धि है, विशेष बुद्धि है। यदि खुद तय करेगा कि इस बुद्धि की वैल्यू नहीं है, तो वह कम होती जाएगी। लोग तो बुद्धि बढ़ाने के उपाय खोजते हैं जबकि यह संसार ही बुद्धि का बखेड़ा है। यदि बुद्धि नहीं होती तो संसार ऐसा रहता ही नहीं।

इस अक्रम ज्ञान से तो अनुपम आनंद रहता है, लेकिन बुद्धि के जाने के बाद। जो बुद्धि है वह दखल करती है। बुद्धि संसार को सुंदर बना देती है, मोक्ष में नहीं जाने देती। इस ज्ञान के बाद प्रज्ञा उत्पन्न होती है, वह ठेठ मोक्ष में ले जाती है। प्रज्ञा कहती है, जो हार्टिली व्यक्ति होगा उसे मैं हेल्प करूँगी, मोक्ष में ले जाऊँगी।

अंत:करण की बुद्धि की संसार में जितनी, जहाँ-जहाँ ज़रूरत है, उतना सहज प्रकाश वह देती ही है और संसार के काम हो जाते हैं लेकिन यदि इस विपरीत बुद्धि का उपयोग करोगे तो सर्व दु:खों को इन्वाइट (आमंत्रित) करोगे। यदि बुद्धि सम्यक् हो गई तो सारे दु:ख खत्म हो जाएँगे।

मनुष्य ने बुद्धि का दुरुपयोग किया, इसलिए निराश्रितपना भुगतता है। जबकि मनुष्य के अलावा करोड़ों जीव हैं, वे आश्रित हैं, सहज रूप से आनंद में हैं। यदि आत्मज्ञानी के दर्शन किए हो और वहाँ श्रद्धा बैठी

हो तो सम्यक् बुद्धि उत्पन्न होती है और फिर सहज भाव से मोक्षमार्ग मिल ही जाता है।

व्यक्ति जो क्रिया करता है उस क्रिया में कोई दिक्कत नहीं है, उसमें बुद्धि का उपयोग हुआ तो तुरंत ही कॉज़ेज़ उत्पन्न हो जाते हैं। बुद्धि बगैर की क्रिया सहज कहलाती है। जब सामने वाला व्यक्ति गाली देता है तब बुद्धि का उपयोग होता है, 'मुझे क्यों दी'? इसलिए क्रोध उत्पन्न होता है, द्वेष करता है, वह कॉज़ेज़ है। आप खाते हो, वह कॉज़ नहीं है, 'मज़ा नहीं आया', उसे खराब कहा, वह कॉज़ है या तो खुश हो गए, वह भी कॉज़ है।

इस ज्ञान के बाद बुद्धि दखलंदाज़ी करती है, यदि ऐसा पता चल जाए तो हमें उसके पक्ष में नहीं रहना चाहिए। दृष्टि बदल लेनी चाहिए, उसकी दखलंदाज़ी के विरोध में रहना चाहिए तो वह धीरे-धीरे बंद होती जाएगी। ये तो जब तक उसे मान देंगे, उसका स्वीकार कर लेंगे, उसकी सलाह मानेंगे, तब तक बुद्धि दखलंदाज़ी करती ही रहेगी।

बुद्धि इमोशनल करवाती है। इमोशनल होने पर जागृति नहीं रहती। यदि इमोशनल बिल्कुल भी नहीं हुए तो वहाँ पर ज्ञाता-दृष्टापना संपूर्ण रूप से रहा, वही साहजिकता है। उसके काम हन्ड्रेड परसेन्ट होते हैं। चंदूभाई क्या कर रहे हैं उसे देखते रहना है, उनके ज्ञाता-दृष्टा रहना है। यदि सुधारने जाएँगे, करने जाएँगे, तो बिगड़ेगा और यदि देखते रहेंगे तो सुधरेगा। एक अवतार का सारा हिसाब लेकर आए हैं। आटा तैयार लेकर आए हैं, उसे फिर से पीसने की ज़रूरत नहीं है। 'मैं कर्ता हूँ' उसी पागलपन की वजह से बिगड़ जाता है। वर्ना, इस शरीर में तो बहुत ज़बरदस्त साइन्स (वैज्ञानिक रूप से) चलता ही रहता है। दखल करने की ज़रूरत ही नहीं।

बुद्धि तो भेद करवाती है, यह अच्छा और यह खराब, वह इमोशनल करवाती है। वह काम की नहीं है। जागृति से जो भेद हुए हैं तो वे काम आएँगे कि 'यह मैं हूँ' और 'यह मैं नहीं हूँ'। यह हितकारी है और यह हितकारी नहीं है, इस तरह से सूझ पड़ती ही रहती है। वह काम आती है। बुद्धि अजंपा (अशांति, बेचैनी) करवाती है। प्रज्ञा में अजंपा नहीं

होता। यदि ज़रा भी अजंपा हुआ तो समझना कि बुद्धि का चलन है। सूर्य का उजाला होने के बाद मोमबत्ती की ज़रूरत नहीं रहती न! उसी प्रकार से आत्मा के ज्ञानप्रकाश के बाद बुद्धिप्रकाश की ज़रूरत नहीं रहती।

महात्मा भरे हुए माल के परिणाम के समय उलझन में पड़ जाते हैं, वहाँ पर ज्ञान की जागृति से उन्हें मोड़ लें कि ये तो पराए परिणाम हैं, डिस्चार्ज हैं और उनका साथ न दें, उन्हें देखते ही रहे, तो वे खुद मुक्तता का अनुभव करेंगे। इस प्रकार की जागृति से चित्त की शुद्धि होती ही रहती है और चित्त की शुद्धि संपूर्ण रूप से होने तक यह योग जमाना है।

सहज अहंकार से, डिस्चार्ज अहंकार से यह संसार सहज रूप से चले ऐसा है। लेकिन यह जीवित अहंकार लड़ता है, झगड़ता है और कर्म चार्ज करता है। उसी से ये सारी उलझनें हैं। मनुष्य अहंकार का उपयोग करके अधोगति बाँधते हैं। अहंकार, वह तो घोर अज्ञानता है। ज्ञान प्राप्ति के बाद जिससे संसार उत्पन्न हुआ था, वह अहंकार चला गया लेकिन यह डिस्चार्ज अहंकार खाली करना बाकी है। जो क्रोध-मान-माया-लोभ भरे हुए हैं, वे डिस्चार्ज अहंकार से खाली होते जाते हैं। स्थूल देह में रहा हुआ और सूक्ष्म अंत:करण का अहंकार, वह लट्टू के जैसा है, डिस्चार्ज है, वह बाधक नहीं है। जो सूक्ष्मतर, पोतापणुं (मेरापन) का अहंकार है, वह दखल करने वाला है। वह चला जाए तो सहज हो जाएगा।

अहंकार अंधा है, वह काम को पूरी तरह से सफल नहीं होने देता और अगला जन्म बाँधता है। यह अज्ञान दशा में जो भी क्रिया करता है, उसमें 'मैं करता हूँ', वह भान सजीव अहंकार है। ज्ञान दशा में खुद को सिर्फ निश्चय करना है, उसके बाद व्यवस्थित काम पूरा करवाएगा। लेकिन खुद 'मैं करता हूँ, मेरे बगैर कोई नहीं कर सकता' ऐसा कहेगा तो सबकुछ बिगाड़ देगा।

प्रत्येक जीवित चीज़ में आत्मा सहज स्वभाव का होता है और प्रकृति भी सहज स्वभाव में होती है। मनुष्य में बुद्धि और अहंकार ने दखल करके प्रकृति को विकृत कर दिया है। विकृत प्रकृति के कारण आत्मा में विकृत का फोटो दिखाई देता है। उसके बाद आत्मा भी (व्यवहार आत्मा)

विकृत हो जाता है। जब नींद आती है तब ज़बरदस्ती जागता है, इस तरह से असहज होता है। सिर्फ, मनुष्य को ही सहज होने की ज़रूरत है।

ये क्रोध-मान-माया-लोभ, अहंकार ये संयोगों के दबाव से, अज्ञानता से, अंधकार की वजह से उत्पन्न हुए हैं। जो ज्ञान होते ही उजाले से, अपने आप सहजासहज बंद हो जाए ऐसा है। बाकी, चाहे कितने भी कष्ट सहन करे तो भी यह वंशावली खत्म नहीं होती। खुद विकल्पी, अपने आप निर्विकल्पी किस तरह से हो सकेगा? यदि मुक्त पुरुष की शरण में जाएगा तो सहज रूप से काम हो जाएगा।

संसार की क्रिया हो रही है उसमें कोई हर्ज ही नहीं है। उसमें जो चंचलता उत्पन्न होती है, जो साहजिकता टूटती जाती है, उससे कर्म बंधते हैं। इस ज्ञान के बाद बाहर की क्रिया अपने आप होती है। खुद की ज़रा भी दखल नहीं रहती। इससे सहजता रहती है। यह चंचलता चली गई, उसे ही साहजिकता कहते हैं।

नए कर्म क्या बाह्य प्रकृति के द्वारा होते हैं? नहीं, वे तो अज्ञान दशा में खुद के जीवित अहंकार और आज की समझ और ज्ञान पर आधार रखते हैं। उससे कर्म उल्टे या सीधे बंध जाते हैं और उसके बाद प्रकृति हमें, उनके फल स्वरूप से ऐसे संयोगों में रखती है। बंधे हुए कर्म को छोड़ने के लिए किसी की ज़रूरत तो पड़ेगी न? इसलिए प्रकृति की बाह्य क्रिया तो होगी ही, वह क्रिया कर्म से छूटने के लिए है। उसके लिए डिस्चार्ज अहंकार चाहिए, लेकिन वह कर्म नहीं बाँध सकता।

खुद, खुद के आत्मा के भान में आ गया, कर्तापना छूट गया उसके बाद उदय स्वरूप ही रहता है, वह अपने आप चलता है। यानी यदि देहाध्यास चला गया तो देह, देह के काम में और आत्मा अपने काम में, वही सहज दशा है।

ज्ञान के बाद जीवित अहंकार चला जाता है, उसके बाद डिस्चार्ज अहंकार भी खत्म हो जाता है। उसके बाद देह क्रिया करती है। वह बिल्कुल सहज क्रिया कहलाती है। उस समय आत्मा भी सहज, दोनों सहज। यदि पुद्गल में दखलंदाज़ी नहीं हो तो साफ होता ही रहता है।

जैसे कि एन्जिन में कोयला और सबकुछ भरकर रखा हो और यदि ड्राइवर नहीं हो तो भी वह चलता ही रहता है, ऐसा इसका स्वभाव है लेकिन यदि बीच में दखल करने वाला बैठा हो तो खड़ा रखेगा, चालू करेगा। दखलंदाज़ी करने वाले कौन हैं? अज्ञान मान्यताएँ और भूलचूक (दोष)।

[7] ज्ञानी करवाते हैं अनोखे प्रयोग

पढ़े-लिखे बुद्धिशाली जब इकट्ठे होते हैं तो 'दादा भगवान के असीम जय जयकार हो' कितने लोग बोलते हैं? एक भी नहीं बोलता। क्योंकि उनकी बुद्धि इतनी बढ़ गई है कि उनका शुक्ल अंतःकरण ही खत्म हो गया है। ऐसे ताली बजाकर क्यों गाना चाहिए? असहजता को निकालने के लिए। दादा भगवान ऐसे अनोखे प्रयोग से असहजता को दूर करवाते थे।

यह ज्ञान तो मिल गया लेकिन अब, पूर्ण सहजता आनी चाहिए न? मंदिर से दर्शन करके आए तो नए जूते चोरी हो गए हो, या तो रास्ते में किसी ने कपड़े उतरवा लिए हो तब भी हमें संकोच रहता है, वही असहजता है। यानी अंदर इस प्रकार से तैयारी, सेटिंग करके पहले से ही संकोच को दूर कर लो और सहजता लाओ। इस संसार में किसी भी प्रकार का भय नहीं रहना चाहिए। कैसी भी स्थिति में सहज रहेगा तो मोक्ष होगा। असहजता से ये एटिकेट के भूत चिपके हैं। जो पूर्ण सहज को भजेंगे तो वे भी सहज हो जाएँगे।

ताली बजाने या नहीं बजाने से मोक्ष में जाएँ ऐसा कोई नियम नहीं है। मोक्ष में जाने के लिए तो व्यक्ति कितना सहज रहता है, वही नियम है। चुपचाप बैठे रहना, ताली नहीं बजाना, एटिकेट में रहना, ऐसी सभी चिढ़ घुस गई हैं। इस चिढ़ को निकालने के लिए दादाजी गरबा करवाते, भक्ति करवाते, माता जी के दर्शन, महादेव जी के दर्शन, मंदिरों में दर्शन करवाते, मस्जिदों में दर्शन करवाते, इन सब से असहजता खाली होती जाती है। अपना विज्ञान क्या कहता है कि किसी भी तरह से सहज हो जाओ।

सहज अर्थात् क्या कि लोगों से डरना नहीं। यदि कोई देख लेगा तो? गाय-भैंसों से नहीं डरते तो लोगों से क्यों डरते हो? आत्मा तो सभी में समान ही है लेकिन मनुष्यों से शर्म आती है। असहजता का

रोग निकालने के लिए दादा कभी किसी को गले में हार पहनकर घर जाने के लिए कहते, यात्रा में जहाँ बड़ा स्टॉप आया हो वहाँ स्टेशन पर उतरकर गरबा करवाते। वहाँ सभी मुक्त मन से गरबा करते। वे किसी से दबे हुए नहीं, किसी की शर्म नहीं, ऐसे सहज दशा में रहते हैं।

जैसा सभी करे वैसा खुद भी करे। खुद का अलग नहीं। पोतापणुं रखना ही नहीं चाहिए, तो सहजता उत्पन्न होती है। जब सभी गा रहे हो तब खुद भी गाने लगे। अर्थात् मुझसे ऐसा नहीं होगा, ऐसी सभी अकड़ चली जानी चाहिए तो सहज हो सकते हैं। सत्संग में सभी जैसा करे वैसा करने से जुदाई नहीं रहेगी। (खुद का) फोटो अलग नहीं आना चाहिए। सभी में मिल जाना चाहिए। खुद की डिज़ाइन अनुसार नहीं रहना चाहिए। जिसका खुद का कुछ भी अलग नहीं, वह सहज है। खुद की ड्रॉईंग अलग बनाए उसे कहेंगे सहजता चूक गए।

ज्ञान से पूर्व जो कुछ भी राग-द्वेष किए हों, हमें पसंद नहीं हो, बोरियत होती हो, यह गलत है, ऐसा नहीं कर सकते, ऐसे सभी रोग भरे हुए हों, वे सभी खत्म हो जाने चाहिए। यहाँ सत्संग में जो कुछ भी होता है, उस उदय में चंदू एकाकार रहे और यदि खुद उसे देखते रहे तो असहजता का रोग खत्म होता जाता है और सहज होकर रहता है।

एटिकेट के रोग खत्म हुए बगैर धर्म परिणाम नहीं पाता न! लोगों को देखकर एटिकेट की नकलें की हैं जिससे यह रोग घुस गया है। उस रोग को निकालने के लिए दादाश्री ने युक्ति की है, जो पढ़े-लिखे लोगों को सहज बना देती है।

ताली नहीं बजाना, वह एक प्रकार का अहंकार है और ये भक्ति-गरबा, ताली बजाकर असीम जय जयकार करने से तो अहंकार का नाश हो जाता है क्योंकि, वह खुद कर्ता नहीं है, चंदूभाई करते हैं न। इसलिए यहाँ सारी क्रियाएँ, रोंग बिलीफ को छुड़वाने वाली है। हमें तो 'चंदू क्या करता है, चंदू ने कैसी ताली बजाई, कैसे गरबा में घूमा,' वह देखना है। यह तो पूर्व में जो चिढ़-तिरस्कार किए हैं वे प्लस-माइनस होकर खत्म हो जाते हैं।

प्रकृति का जो सारा भाग है, वह तो माता जी है, वे आद्यशक्ति

स्वरूप से हैं। इसलिए माता जी की भक्ति करने से प्राकृतिक शक्ति उत्पन्न होती है। यहाँ 'चंदू' के पास माता जी की भक्ति करवाने से प्रकृति सहज होती जाती है। दादाश्री कहते कि हम अंबे माँ के इकलौते लाल हैं, यदि हमारी चिट्ठी लेकर माता जी के दर्शन करने जाओगे तो माता जी स्वीकार करेंगी। माता जी के आशीर्वाद से संसार के विघ्न दूर होते हैं लेकिन मोक्ष तो आत्मज्ञान के द्वारा ही प्राप्त होता है।

[8] अंत में प्राप्त करनी है अप्रयत्न दशा

संसार भी बाधक नहीं है और संसार की ज़िम्मेदारियाँ भी बाधक नहीं हैं, खाने के बाद भीतर सहज रूप से चलता है उसके बजाय बाहर ज़्यादा सहज चलता है। हमें क्या हो रहा है उसे देखते रहना है। क्योंकि बाहर की क्रिया व्यवस्थित के ताबे में है, अपने ताबे में नहीं है। व्यवस्थित अर्थात् क्या कि सहज भाव से रहो और जो हो रहा है उसे होने दो। तो हम अप्रयत्न दशा में रह पाएँगे और ज्ञान परिणाम पाएँगे। अंत में यह दशा प्राप्त करनी है।

खाने के बाद क्या देखने जाना पड़ता है कि भीतर पाचक रस डले, पाचन किसने करवाया, अपने आप ही सारी क्रिया होकर सबकुछ अलग-अलग हो जाता है न? भीतर कौन करने गया था? रात को नींद में शरीर सहज होता है, अंदर का अपने आप ही चलता है। तो क्या बाहर का नहीं चलेगा? 'मैं करता हूँ, मुझे करना पड़ेगा' ऐसा मानकर दखल करते रहते हैं। बाकी, खाना-पीना, काम-व्यापार, व्यवहार सबकुछ सहज भाव से चलता है। सहज भाव में बुद्धि का उपयोग नहीं होता। सहज अर्थात् अप्रयत्नदशा, खुद का किसी भी प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं। हाँ, चंदू का प्रयत्न होता है, वह भी व्यवस्थित के अधीन होता रहता है, लेकिन खुद 'मैंने यह किया', वह भान नहीं होता।

इस संसार में करने जैसा और नहीं करने जैसा कुछ भी नहीं है। क्या होता है उसे देखते-जानते रहना है। अपनी दृष्टि कैसी रखनी है? सहज। क्या होता है, उसे देखना है। यदि व्यवस्थित संपूर्ण रूप से समझ में आ जाए तो केवलज्ञान प्रकट होता जाएगा, संपूर्ण सहज होता जाएगा।

ज्ञान मिलने के बाद निर्विकल्प तो हो गए लेकिन सहज नहीं हुए। जितना सहज होते जाएँगे उतनी वीतरागता आती जाएगी।

दादाश्री कहते हैं, हमें, 'आज ऐसा करना है', ऐसा कुछ भी नहीं रहता। क्या मिलता है और क्या नहीं, इतना ही देखते हैं। अपने आप सहज रूप से मिल जाता हो तो, वर्ना कुछ नहीं। इसलिए यदि कोई काम नहीं होता तो हिसाब लगाकर देखते हैं कि इसमें कौन से संयोग की कमी है? ऐसे टाइम और सभी संयोग को देखते-देखते साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स सब का पता चला कि जगत् किस तरह से चलता है!

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के इकट्ठे होने (मिलने) पर कार्य हो जाता है। उसमें खुद का कर्तापना कहाँ है?

अंत में सहज होना पड़ेगा। सहज हुए बगैर नहीं चलेगा। अप्रयत्न दशा से चाय व खाना जो भी आए उसमें कोई हर्ज नहीं। सहजता से खीर-पूरी मिले तो उसे खाए और सब्ज़ी-रोटी मिले तो उसे भी खाए। एक का आदर नहीं और दूसरे का अनादर नहीं, वह सहज है। बाहर के प्राप्त संयोगों और अंदर के मन, बुद्धि के सभी संयोगों से पर होता है, अंदर जो चीख-पुकार करते हैं, जब उन सभी को खुद अलग रहकर देखेगा तब सहज दशा प्राप्त होगी। यदि दो बजे खाना मिला तो भी कुछ नहीं बोलना, क्या होता है उसे देखते रहना। खाने में यह दिक्कत करेगा, वह दिक्कत करेगा, ऐसा सब विकृत बुद्धि वाले को दिक्कत करता है, सहज को कुछ नहीं होता। सामने से आया हुआ दुःख भुगत ले, सामने से आया हुआ सुख भोग ले, सामने से आया हुआ खा ले, हमें दखल नहीं करना चाहिए, उसे सहज कहते हैं। सहज की प्राप्ति, वह प्रारब्ध के अधीन नहीं है, वह ज्ञान के अधीन है। यदि अज्ञान होगा तो असहज होगा और यदि ज्ञान होगा तो सहज होता जाएगा। यह तो अक्रम विज्ञान है, क्रम नहीं, कुछ नहीं करना है। जहाँ करे वहाँ संसार, जहाँ सहज वहाँ आत्मा।

मैं चलाता हूँ, मुझे कुछ करना पड़ेगा, मैं करता हूँ, वे भाव नहीं, कर्तापना की लगाम ही छोड़ देनी है। एक दिन ऐसा भाव करना कि दादा, मैंने आपको लगाम सौंप दी, अब तो मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मुझे कुछ नहीं

चलाना है। उसके बाद देखो चलता है या आपको चलाना पड़ता है? यह तो 'मैं करता हूँ' ऐसे लगाम पकड़कर रखते हैं इसीलिए बिगड़ता है। यदि पाँच इन्द्रियों के घोड़ों की लगाम को छोड़ देंगे तो सहज रूप से चलता रहेगा। व्यवस्थित समझ में आएगा कि रोज़ के बजाय तो आज अच्छा चला। सबकुछ खाना-पीना, व्यापार वगैरह सब अच्छा चला। अगर दोबारा फिर से लगाम पकड़ में ले ली हो, दखल हो जाए तो माफी माँग लेनी है। उसके बाद प्रेक्टिस करते-करते करेक्टनेस आ जाएगी। उससे आगे का स्टेज, चंदूभाई क्या बोल रहे हैं, उसे देखते रहना है कि यह करेक्ट है या नहीं! यह सहज हो गया, वह तो अंतिम दशा की बात है!

सहज दशा तक पहुँचने के लिए इससे आगे का पुरुषार्थ करने के लिए दादाश्री बताते हैं कि जिसे जल्दी हो उसे अपरिग्रही हो जाना चाहिए। तू व्यवहार से चिपका है कि व्यवहार तुझसे चिपका है? उस व्यवहार का झटपट निकाल (निपटारा) कर देना है और व्यवहार कितना रहना चाहिए? आवश्यक। हवा, पानी, खुराक लेकिन ज़रूरत से ज़्यादा झंझट, वह अनावश्यक कहलाती है। वह उपाधि (बाहर से आने वाला दु:ख) करवाती है और असहज बनाती है और आवश्यक भी कुछ भी सोच-विचार किए बिना सहज होना चाहिए। अपने आप, इस तरह से अंतिम दशा का चित्रपट लक्ष में है तो उसकी पैरवी (कोशिश) में रहना है। आवश्यक और अनावश्यक दोनों की लिस्ट बना लेना, यदि अनावश्यक चीज़ें चिपक गई हो तो धीरे-धीरे उन्हें कैसे छोड़ दें, उसकी पैरवी में रहना है। लेकिन इस ज्ञान को जानकर रखना है, करने नहीं लग जाना है। हमारे भीतर में ऐसी जागृति होनी चाहिए कि ये वस्तुएँ दु:खदायी लगे। अनावश्यक चीज़ों के लिए खुद के भाव, खुद के करार नहीं रखने हैं। उसके बाद उन चीज़ों को व्यवस्थित उसके समय पर हटा देगा। इस ज्ञान के बाद परिग्रह मात्र डिस्चार्ज है। डिस्चार्ज भले ही रहा, लेकिन डिस्चार्ज में खुद का मोह छोड़ देना है, ममता को विलय कर देना है। भरत चक्रवर्ती राजा के जैसा, परिग्रह होने के बावजूद भी संपूर्ण रूप से अपरिग्रही। मैं अपरिग्रह वाला ही हूँ, मेरा कुछ भी नहीं है, यह स्थिति दादाजी को बरतती है। इस जन्म में वहाँ तक पहुँचना है। अंत में देह को भी सहज करना है।

[9] नहीं करना कुछ, केवल जानना है

सहजता अर्थात् अप्रयत्न दशा। प्रयास करने वाला खत्म हो गया उसके बाद आत्मा (प्रज्ञा) जानता रहता है और मन-वचन-काया करते रहते हैं। पूर्व में 'मैं कर्ता हूँ' उस भान से असहजता थी। अब, 'मैं कर्ता नहीं हूँ' उस भान से अप्रयत्न दशा शुरू हो गई और वह प्रयास करने वाला, दखल करने वाला ही खत्म हो गया है, उसके बाद केवल जानपना ही रहता है। मन-वचन-काया काम करने वाले हैं, लेकिन प्रयास करने वाले की गैरहाज़िरी से, वह सहज दशा है। क्रिया में हर्ज नहीं है, प्रयास करने वाला बनने में हर्ज है, तब तक वह असहज दशा है।

मन-वचन-काया और अंत:करण व्यवस्थित के अधीन डिस्चार्ज होते रहेंगे। उनके कार्य में कोई चेन्ज नहीं होने वाला, यदि प्रयास करने वाला नहीं हो तो। प्रयास करने से दखल होता है। खुद कुछ नहीं कर सकता। जो हो रहा है उसमें रोंग बिलीफ से 'मैं करता हूँ' मानता है, दखल करता है और यदि प्रयास करने की रोंग बिलीफ छूट जाए, ज्ञान हाज़िर रहे तो फिर अप्रयास दशा रहेगी। जो सहज हो गया वह दादाश्री की स्थिति में पहुँच गया।

सहज दशा में जो अंतराय आते हैं उन्हें रोकना नहीं है, उन्हें देखना है। हटाने में तो हटाने वाला चाहिए और संयोगों को हटाना, वह गुनाह है क्योंकि काल के पकने पर उसका खुद ही वियोग हो जाएगा। संयोग वियोगी स्वभाव के हैं इसलिए संयोगों को देखने का पुरुषार्थ करना है।

स्वाभाविक दशा में आने के लिए खुद को क्या करना है? दादाश्री कहते हैं कि विभाविक पुरुषार्थ करने से नहीं होता। नासमझ व्यक्ति खुद पुरुषार्थ करके समझदार नहीं बनेगा। उसे तो समझदार की शरण में जाकर कहना पड़ेगा कि कृपा करो, तो उसमें परिवर्तन होगा।

खुद के दखल की वजह से नए संयोग उत्पन्न होते हैं। यदि खुद का दखल नहीं रहा, सहज रूप से रहा तो वे पिछले संयोग छूटते जाएँगे। महात्माओं को पाँच आज्ञा का पुरुषार्थ ही सहज बनाएगा। सहजता खुद की है और संयोग पर हैं और पराधीन हैं।

महात्माओं को अभी देखने का पुरुषार्थ करना पड़ता है। वे देखने के

कार्य में लगे हैं, ऐसा कहते हैं। देखने का वह कार्य सहज रूप से होना चाहिए। अभी जो देखने वाला रहता है, उसे भी जानने वाला उसके ऊपर है। अंतिम ऊपरी को देखना नहीं पड़ता, उसे सहज ही दिखाई देता है। बीच का उपयोग प्रज्ञा शक्ति का है, उसे भी देखने वाला जो है वह मूल स्वरूप है। जैसे आईने में दिखाई देता है, आईने को देखना नहीं पड़ता, सहज स्वभाव से झलकता है।

महात्माओं को मोक्ष में जाने की इच्छा हुई इसलिए यह संसार भाव टूट गया, अपने आप ही। जैसे कि अहमदाबाद की तरफ आगे चले तो मुंबई अपने आप ही छूट जाएगा। यदि भाव त्याग बरते तो उसके परिणाम में भरा हुआ माल खाली हो ही जाएगा! यही अक्रम विज्ञान है! भरा हुआ माल अपने आप ही खाली हो जाएगा, निकालना नहीं पड़ेगा।

[10] 'सहज' को निहारने से, प्रकट होती है सहजता

आत्मा सहज है, अब पुद्‌गल को सहज करो लेकिन वह किस तरह से सहज होगा? सहजात्म स्वरूप ज्ञानी को देखने से, उनकी सहज क्रियाओं को देखने से सहज हो सकते हैं। यदि कोई गाली दे रहा हो और उस समय यदि ज्ञानी की सहजता देखने को मिले तो खुद में तुरंत ही वैसी सहजता आ जाती है। ज्ञानी को देखने की दृष्टि और उनके प्रति अहो भाव रहा तो वैसे गुण खुद में प्रकट हो जाते हैं। जैसे कि यदि किसी को जेब काटने में एक्सपर्ट बनाना हो तो उसके उस्ताद के पास छः महीने के लिए छोड़ दें तो वह एक्सपर्ट बन जाता है। कॉलेज में पढ़ने से नहीं बनता। डॉक्टर के लिए भी तीन साल तक एक्सपर्ट डॉक्टर के अन्डर में इन्टर्नशिप करवाते हैं, तब जाकर सर्टिफाइड डॉक्टर बनता है। ठीक वैसे ही यदि ज्ञानीपुरुष के पास रहकर, उनका राजीपा (गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता) प्राप्त करेगा, कृपा प्राप्त करेगा तो अपने आप ही सहजता आ जाएगी।

परम पूज्य दादाश्री की सेवा में, सानिध्य में पूज्य नीरू माँ रहे तो वह सहज दशा उनमें सहज रूप से ही प्रकट हो गई थी। अहंकार और बुद्धि बगैर की दशा! ये दोनों दशा तो ज्ञानी के अलावा कहीं और देखने को ही नहीं मिलती न! लोगों को वीतरागता रखना नहीं आता लेकिन ये जो वीतराग पुरुष हैं वे तो तुरंत ही समझ जाते हैं! फोटोग्राफर भी

सहज को देखकर तुरंत ही पहचान जाते हैं और उनके फोटो लेते रहते हैं! ऐसे जगत् के सारे नियम हैं।

जो देह के, मन के, वाणी के मालिक नहीं हैं, ऐसे ज्ञानीपुरुष के पास प्रत्यक्ष समाधि दशा देखने को मिलती है! यदि कोई उन्हें चाटा मारे तो भी उनकी समाधि नहीं जाती और ऊपर से वे आशीर्वाद देते हैं!

यदि बीच में दखल करने वाला चला गया तो अंतःकरण से आत्मा अलग ही है। आत्मा अलग बरतता है और अंतःकरण और बाह्यःकरण से सांसारिक कार्य चलते रहते हैं। उसे ही सहज कहते हैं। साहजिक अर्थात् नो लॉ लॉ। जैसे अनुकूल आए वैसे रहे। मुझे लोग क्या कहेंगे, ऐसे विचार भी नहीं आते! 'मैं करता हूँ' वह भाव ही खत्म हो गया और क्रिया स्वाभाविक होती रहती है, पोटली के जैसे बरतते हैं।

यदि पोतापणुं ही नहीं रहेगा तो खुद का मत ही नहीं रहेगा। अर्थात् परायों के मत से चलते रहना, वही साहजिकपना है। रिलेटिव में कुदरत जैसे रखे वैसे रहे और खुद निरंतर साहजिकता में ही रहे। यदि सहज हो जाए तो निरंतर उपयोग में रह सकते हैं। दादाश्री कहते हैं, जब तक हम में साहजिकता होती है तब तक हमें प्रतिक्रमण नहीं करने पड़ते। जब साहजिकता में फर्क होता है तब प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं।

ज्ञानी का शुभ व्यवहार सहज भाव से होता है और अज्ञानी को शुभ व्यवहार करना पड़ता है। ज्ञानी को त्याग या अत्याग (ग्रहण) की झंझट होती ही नहीं, सहज भाव से ऐसी विशेष विलक्षणता होती है जिससे कि शुभ पर राग या अशुभ पर द्वेष, किंचित्मात्र नहीं होता।

भगवान महावीर के कान में कीलें ठोकी गईं, कान में से कीलें निकालते समय उनकी देह से चीख निकली होगी या आँखों में से आँसू निकले होगें, फिर भी वह देह अपने सहज भाव में होती है और पर-परिणाम जो डिस्चार्ज स्वरूप है, उसमें खुद वीतराग ही रहते हैं। यदि देह को असर न हो और स्थिर रहे वैसा तो अहंकार से रख सकते हैं, वे ज्ञानी कहलाते ही नहीं। ज्ञानी का तो सहज आत्मा अर्थात् स्व-परिणाम और देह अपने सहज स्वभाव में उछल-कूद करे। कील ठोकते समय

भगवान महावीर के करुणा के आँसू थे और कील निकालते समय वेदना के आँसू थे! ये सभी अलौकिकबातें हैं! अहंकार क्या करता है कि यदि मैं अभी रोऊँगा तो लोगों को मेरा ज्ञान गलत लगेगा, इसलिए रोता नहीं। जबकि सहजता वालों को तो भले ही लोगों को कैसा भी लगे, उनका आत्मा खुद स्व-परिणाम में ही रहेगा, वही सहज आत्मा है! यदि देह जल जाए तो असर में आ जाए, हिल जाए वह भी सहज स्वभाव में है।

जब गजसुकुमार के सिर पर अँगारे की सिगड़ी बनाकर रखी तब उनका सिर जल रहा था, उसे वे ज्ञान में रहकर देखते रहें। उसमें जो समता रखी कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ, केवलज्ञान स्वरूप हूँ, यह अलग है।' भीतर बहुत जलन हुई, उस जलन का एहसास हुआ लेकिन अंत में हिसाब पूरा करके मोक्ष में चले गए।

ज्ञानी, तीर्थंकर निरंतर खुद के केवलज्ञान स्वरूप में ही रहते हैं और खुद के एक पुद्‌गल में ही दृष्टि रखकर देखते रहते हैं। दादाश्री कहते हैं, हम में अभी चार डिग्री की कमी है इसलिए ज्ञान में भगवान महावीर के जैसे तो नहीं रह पाते। और वह चार डिग्री की कमी भी हम लोगों के कल्याण के लिए है। ज्ञानविधि के द्वारा ज्ञान देना, आज्ञा देना और उस पुरुषार्थ का फल है कि उन्हें चार डिग्री की कमी है, उसमें दो डिग्री बढ़ी, ऐसे डिग्री बढ़ते-बढ़ते वह पुरुषार्थ केवलज्ञान के नज़दीक ले जाता है। केवलज्ञान हो जाने के बाद कोई पुरुषार्थ बाकी नहीं रहता, उसके बाद एकदम सहज भाव ही रहता है।

[11] विज्ञान से पूर्णता के पंथ पर

यदि एक मिनट भी सहज हो गया तो वह भगवान के पद में आ गया। इस अक्रम विज्ञान और दादा भगवान की कृपा से महात्माओं को इस सहज दशा की शुरुआत हो गई है। ये पाँच आज्ञा, इस विज्ञान की समझ हमें निरंतर सहज ही बना रही है और पूर्ण रूप से सहज हो गए अर्थात् भगवान पद।

जब से ज्ञान दिया तब से सहजता बढ़ती जाती है। और अंतिम दशा कौन सी? आत्मा सहज स्थिति में और देह भी सहज स्थिति में।

निश्चय आत्मा तो सहज है, व्यवहार आत्मा को आज्ञा में रहकर सहज करना है और वे दोनों एक हो गए, तब वह कायम के लिए परमात्मा बन जाता है।

सहज पुरुषों के वाक्य संसार के लिए हितकारी होते हैं। अक्रम विज्ञान में सहज होने के ऐसे उपाय हैं!

देह को सहज करना अर्थात् उसकी जो इफेक्ट है उसमें किसी भी प्रकार का दखल नहीं करना। 'मैं कुछ करता हूँ' उस भ्रांति से दखल हो जाता है। 'यह मुझसे नहीं होगा, यह मुझसे हो जाएगा, मुझे यह करना है,' वह सब अहंकार ही है। वही दखल सहज नहीं होने देता। व्यवहार में जब तक संपूर्ण रूप से तैयार नहीं होते तब तक संपूर्ण आत्मा प्राप्त नहीं होता। सहजात्म स्वरूप व्यवहार में अर्थात् किसी की किसी में आमने-सामने दखल नहीं, कि ऐसा होता है या ऐसा नहीं होता। कर्ता पुरुष जो कुछ भी करता है, उसे ज्ञाता पुरुष निरंतर जानता रहता है।

कृपालुदेव कहते हैं कि जीव की सहज स्वरूप की स्थिति का होना, उसे श्री वीतराग मोक्ष कहते हैं। दादाश्री कहते हैं कि हमारी सहज स्वरूप की स्थिति हो गई है। महात्माओं को सहज स्वरूप होना है। सहज रूप से स्थिति होनी अर्थात् पुद्‌गल (जो पूरण और गलन होता है) सही-गलत हो, वह पूरण (चार्ज होना) हुआ माल गलन (डिस्चार्ज होना) होता है, उसे देखने और जानने की ही ज़रूरत है।

अहो कैसा अद्‌भुत आश्चर्य इस अक्रम विज्ञान का कि संसार की सभी क्रियाएँ हो सकती हैं और आत्मा की भी सभी क्रियाएँ हो सकती हैं! दोनों अपनी-अपनी क्रिया में रहते हैं, संपूर्ण वीतरागता में रहकर!

सहजात्म स्वरूपी इन ज्ञानीपुरुष दादाश्री ने अत्यंत करुणा की है इस काल के जीवों के प्रति, ऐसा आश्चर्यजनक अध्यात्म विज्ञान देकर, बहुत से लोगों का संपूर्ण रूप से कल्याण कर दिया है। ज्ञानीपुरुष का मौन तपोबल अनेकों का कल्याण करके ही रहेगा!

- दीपक भाई देसाई के जय सच्चिदानंद

अनुक्रमणिका

[1] सहज 'लक्ष' स्वरूप का, अक्रम द्वारा

[2] अज्ञ सहज - प्रज्ञ सहज

[3] असहज का मुख्य गुनहगार कौन?

[4] आज्ञा का पुरुषार्थ बनाता है सहज

[5] त्रिकरण ऐसे होता है सहज

[6] अंतःकरण में दखल किसकी?

[7] ज्ञानी प्रकाशमान करते हैं अनोखे प्रयोग

[8] अंत में प्राप्त करना है अप्रयत्न दशा

[9] नहीं करना कुछ भी, केवल जानना है

[10] 'सहज' को देखने से, प्रकट होती है सहजता

[11] विज्ञान से पूर्णता की राह पर

नोट : मुख्यपृष्ट (टाइटल पेज) के विस्तृत रूप से समझने के लिए चैप्टर नंबर-2 (अज्ञ सहज - प्रज्ञ सहज) का अभ्यास कीजिए।

सहजता

[1]

सहज 'लक्ष' स्वरूप का, अक्रम द्वारा

यहाँ प्राप्त होता है, 'स्व' का साक्षात्कार

दादाश्री : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', क्या उसका *लक्ष* (जागृति) निरंतर रहता है?

प्रश्नकर्ता : निरंतर रहता है, दादा। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का *लक्ष* हमेशा रहता है, चौबीसों घंटे।

दादाश्री : यह अपने *लक्ष* में रहता ही है, वह आत्मध्यान कहलाता है, वह शुक्लध्यान कहलाता है। वर्ना, एक पल के लिए भी आत्मा याद नहीं रहता। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह याददाश्त नहीं है, यह तो साक्षात्कार है और अभेदता है।

यह आत्मज्ञान मिलने के बाद अब वह 'खुद' सम्यक् दृष्टि वाला बना है। पहले 'खुद' मिथ्या दृष्टि वाला था। जब ज्ञानी इन रोंग बिलीफों (मिथ्या दृष्टि) को फ्रैक्चर कर देते हैं, तब राइट बिलीफ बैठ जाती है। राइट बिलीफ अर्थात् सम्यक् दर्शन। इसलिए फिर ऐसी बिलीफ बैठ जाती है कि 'मैं चंदूभाई नहीं हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ'।

दोनों अहंकार की ही दृष्टि है। पहले वाली जो रिलेटिव दृष्टि थी, वह दृश्य को देखती थी, भौतिक चीज़ों को, जबकि यह रियल दृष्टि चेतन वस्तु को देखती है। चेतन, वह दृष्टा है और बाकी का सब दृश्य है। दृष्टा और ज्ञाता, दोनों चेतन के गुण हैं।

प्रश्नकर्ता : दृष्टि, वह तो दृष्टा का कार्य है न?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो दृष्टि क्या है?

दादाश्री : दृष्टि तो अहंकार की है आत्मा की दृष्टि नहीं होती। आत्मा को तो सहज स्वभाव से भीतर दिखाई देता रहता है, भीतर में झलकता है! खुद के अंदर ही सब झलकता है!

प्रश्नकर्ता : तो फिर इस आत्मा को जानने वाला कौन है? यह जो आत्मज्ञान होता है, वह किसे होता है?

दादाश्री : वह दृष्टि अहंकार को मिलती है। वह जो मिथ्या दृष्टि थी, उसके बजाय 'इसमें' ज़्यादा सुख मिलता है इसलिए फिर वह अहंकार धीरे-धीरे 'इसमें' विलय होता जाता है। अहंकार शुद्ध होते ही वह शुद्धात्मा में विलय हो जाता है, बस! जैसे कि, अगर शक्कर की गुड़िया को तेल में डाली जाए तो वह नहीं घुलती लेकिन अगर उसे पानी में डालें तो वह घुल जाती है। यह भी इसी तरह से है। अर्थात् शुद्धात्मा दृष्टि होते ही सब विलय होने लगता है। तब तक अहंकार है।

जो सहज रूप से होता रहे, वह है विज्ञान

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', क्या वह ज्ञान है?

दादाश्री : नहीं! वह ज्ञान तो विज्ञान कहलाता है। ज्ञान तो इन शब्दों में लिखा हुआ है। जो करना पड़ता है, उसे ज्ञान कहते हैं और जो करना नहीं पड़ता, अपने आप सहज रूप से होता ही रहता है, वह विज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : सहज भाव से आत्मा की दशा प्राप्त करने के लिए ध्यान में बैठना चाहिए या नहीं?

दादाश्री : सहज भाव उसी को कहा जाता है कि कोई भी प्रयत्न किए बिना नींद में से जागते हो, तब भी क्या आपको 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा ध्यान अपने आप आ जाता है?

प्रश्नकर्ता : आता है।

दादाश्री : वह सहज कहलाता है और अन्य सब असहज कहलाता है। यह सहज कहलाता है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' अपने आप ही रहता है जबकि कहीं और गुरु महाराज मंत्र स्मरण देते हैं। वह याद आए या न भी आए। उसके लिए प्रयत्न करना पड़ता है जबकि यह तो आपको सहज रूप से हो गया है। आपका सहजात्मस्वरूप हो गया है। आपका आत्मा सहज हो गया है, अब देह को सहज करना है। वह पाँच आज्ञा का पालन करने से सहज हो सकती है। जब दोनों सहज हो जाते हैं तो उसी को मोक्ष कहते हैं।

सहज रूप से बरतता है लक्ष, शुद्धात्मा का

प्रश्नकर्ता : समकित प्राप्त जीव को, आत्मा का स्मरण किस प्रकार से रहता है?

दादाश्री : समकिती जीव को, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह भान अपने आप रहता है जबकि और लोगों का कोई ठिकाना नहीं रहता। उन्हें तो कभी कुछ समय के लिए थोड़ा-बहुत याद आता है कि 'मैं आत्मा हूँ' लेकिन समकिती को तो अपने आप रहता ही है। जबकि स्मरण करना पड़ता है उसमें बहुत अंतर है। स्मरण करने से वह विस्मृत हो जाता है। जो विस्मृत हो गया है, उसका स्मरण करना है, अर्थात् ये सभी आगे बढ़ने के रास्ते हैं इसलिए आपको रटना नहीं है। रटने से तो 'वह' मूल, सहज वाला बंद हो जाएगा। सहज वाला भीतर से आता है, अपने आप ही आता है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', का ही *लक्ष* रहा करता है।

प्रश्नकर्ता : तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा बोलना नहीं है?

दादाश्री : बोलना है तो बोलो, वर्ना उसकी कोई ज़रूरत नहीं है। वह निरंतर चौबीस घंटे *लक्ष* में ही रहता है। रोज़ रात को 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलते-बोलते सो जाना है और पाँच आज्ञा का पालन करना, तो बहुत हो गया। तब यहीं पर मुक्ति हो जाएगी, सभी दु:खों का अभाव हो जाएगा, फिर संसारी दु:ख स्पर्श नहीं करेंगे।

नहीं है यह रटन, शुद्धात्मा का

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञान' लेने के बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ', 'मैं शुद्धात्मा हूँ', का रटन और भगवान का नाम-स्मरण, इन दोनों में क्या अंतर?

दादाश्री : ओहोहो! रटने की तो ज़रूरत ही नहीं है। रटन तो रात में थोड़ी देर के लिए करना है लेकिन पूरा दिन ही, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', 'मैं शुद्धात्मा हूँ', इस प्रकार से रटने की कोई ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं करे फिर भी 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा अपने आप आ जाता है।

दादाश्री : नहीं! लेकिन रटने की ज़रूरत नहीं है। रटना और अपने आप आना, दोनों में अंतर है। अपने आप आने में और रटने में अंतर है या नहीं? क्या अंतर है?

प्रश्नकर्ता : वह सहज रूप से आ जाता है।

दादाश्री : हाँ! सहज रूप से आ जाता है। अर्थात् जो आपको सहज ही रहता है, वह तो बहुत कीमती है। अगर रटने की कीमत चार आने है, तो इसकी कीमत अरबों रुपए है। इतने अंतर वाली बात को आपने एक साथ रख दिया। अभी आपके ध्यान में ऐसा रहता है कि 'मैं चंदूभाई हूँ' या ऐसा रहता है कि वास्तव में 'मैं शुद्धात्मा हूँ'?

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।

दादाश्री : तो वह शुक्लध्यान कहलाता है। आपके ध्यान में जो शुद्धात्मा है, उसे शुक्लध्यान कहा है और शुक्लध्यान, वह प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है। अर्थात् आपके पास जो पूँजी है, वह अभी हिन्दुस्तान में, इस वर्ल्ड में कहीं भी नहीं है! इसलिए इस पूँजी का उपयोग सावधानीपूर्वक करना! और उसकी तुलना इससे मत करना। आपने इसकी तुलना किससे की है?

प्रश्नकर्ता : भगवान के नाम-स्मरण से।

दादाश्री : वह तो जप कहलाता है और जप तो एक प्रकार की शांति के लिए ज़रूरी है, जबकि यह तो सहज चीज़ है।

जहाँ प्रयत्न वहाँ अनुभव नहीं

क्रमिक मार्ग में कितना प्रयत्न करते हैं, तब जाकर आत्मा के *लक्ष* का पता चलता है! वैसा *लक्ष* तो रहता ही नहीं। उसे खुद को *लक्ष* में रखना पड़ता है। जैसे कि व्यापार में होता है न, व्यापार की बातें हमें *लक्ष* में रखनी पड़ती हैं, उसी प्रकार से आत्मा को *लक्ष* में रखना पड़ता है कि आत्मा ऐसा है! इस तरह जब उसे प्रतीति बैठेगी तभी ऐसा *लक्ष* में रह पाएगा। उसे गुणों पर प्रतीति बैठती है। जबकि अपना तो यह आत्मानुभव कहलाता है, क्योंकि सहजता को ही अनुभव कहते हैं, जो कि अपने आप प्राप्त होता है। जिसके लिए प्रयत्न करना पड़े, उसे अनुभव नहीं कहेंगे। क्रमिक में उन्हें प्रतीति वगैरह लानी पड़ती है। प्रतीति के लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

लेकिन आपका जो आत्मानुभव है, वह अंश अनुभव है और अक्रम द्वारा वह आपको सहज रूप से प्राप्त हो चुका है न, इसलिए आपको उससे लाभ होता है लेकिन अभी जैसे-जैसे प्रगति करते जाओगे, वैसे-वैसे अनुभव बढ़ता जाएगा। जैसे-जैसे जागृति उत्पन्न होगी, उसकी बाद पूरी बात समझनी पड़ेगी। परिचय में रहकर ज्ञान समझ लेना है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान को स्थिर करने के लिए कौन से साधन अपनाने पड़ते हैं?

दादाश्री : साधन नहीं अपनाने हैं, ज्ञान को स्थिर करने के लिए सिर्फ समझने की ही ज़रूरत है। करने से स्थिर नहीं होगा। जहाँ करना पड़े, वहाँ सहजता चली जाएगी, स्थिर नहीं हो पाएगा। समझना पड़ेगा तभी स्थिर होगा।

सहज ध्यान, वह है केवल दर्शन

प्रश्नकर्ता : क्या शुद्धात्मा को ध्यान में रखने के लिए उसका अभ्यास करना ज़रूरी है?

दादाश्री : अभ्यास करने से तो बल्कि उसका ध्यान चला जाएगा। ध्यान तो सहज स्वभावी है। सूर्यनारायण उगते हैं तो क्या सूर्यनारायण के मन में ऐसा होता है कि मुझे सभी जगह प्रकाश फैलाना पड़ेगा? नहीं! कहेंगे कि 'आप आ गए उतना ही बहुत हो गया, आप प्रकाश मत फैलाना। माथापच्ची मत करना। ऐसी माथापच्ची में आप कहाँ पड़ गए।' आप आए उतना ही हमारे लिए बहुत हो गया। अर्थात् ऐसा तो होगा ही, उन्हें प्रयत्न नहीं करने पड़ते। वह सहज चीज़, स्वाभाविक चीज़ है। हमारी आज्ञा में रहना वहाँ प्रयत्न व पुरुषार्थ की ज़रूरत है। वह पुरुषार्थ वाली चीज़ है। अन्य सभी जगह पर तो सहज ही होता रहता है। अपने आप ही उसका फल आता है।

एक सेठ कार में जा रहे हों और अचानक एक्सिडेन्ट (दुर्घटना) हो जाए, तब उन्हें अस्पताल ले जाते हैं। उनका पैर काटना पड़ता है और फिर चलने के लिए उन्हें लकड़ी का सहारा लेना पड़ता है। अब, वे सो जाते हैं। फिर नींद में से जागने पर तुरंत ही उन्हें खुद को सहज भाव से याद आएगा। सब से पहले उन्हें लकड़ी याद आएगी। इस प्रकार सहज रूप से ध्यान बैठना, वह 'केवल दर्शन' है।

एक बार कॉलेज में पास हो जाने के बाद, क्या उसे भूल जाते हैं?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : उसी प्रकार, एक बार आप शुद्धात्मा हो गए, तो वह कैसे भूल सकते हो? कॉलेज में फेल हो गए, उसे भी कैसे भूल सकते हो? पास हुए तो उसे भी कैसे भूल सकते हो?

आत्म दृष्टि की जागृति

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई और आत्मा अलग हैं, ऐसा सहज रूप से पता चलना चाहिए या हमें प्रयत्न करना चाहिए, प्रैक्टिकली?

दादाश्री : नहीं! वह तो जागृति ही कर देगी। वैसी जागृति रहती ही है। जैसे कि यदि हमने एक डिब्बी में हीरा रखा हो, तो जिस दिन

डिब्बी खोली थी, उस दिन हीरा देखा था। लेकिन फिर डिब्बी बंद करके रख दी, फिर भी हमें उसके भीतर हीरा दिखाई देता है। नहीं दिखाई देता?

प्रश्नकर्ता : दिखाई देता है।

दादाश्री : यह जो 'दिखाई देता है' उसका क्या अर्थ है? उसके बाद आपको हमेशा ध्यान रहता है न, कि इस डिब्बी में हीरा है। फिर क्या ऐसा कहते हो कि यह डिब्बी ही है या फिर इस डिब्बी में हीरा है, ऐसा कहते हो?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, ऐसा होता है कि रास्ते में जाते समय शुद्धात्मा देखते हुए जाते हैं लेकिन जैसे एक चीज़ देखी कि इस डिब्बी में हीरा ही है, तो जिस तरह से वह दिखाई देता है, उतना स्पष्ट इसमें नहीं दिखाई देता।

दादाश्री : स्पष्ट देखने की ज़रूरत भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह तो फिर मिकेनिकल लगता है।

दादाश्री : नहीं-नहीं! वह तो आपको ऐसा लगता है कि देखा हुआ है। अपने *लक्ष* में रहता ही है कि हीरा ही है।

दिव्यचक्षु के उपयोग से...

इन सभी में शुद्धात्मा देखते हो क्या?

प्रश्नकर्ता : देखता हूँ लेकिन कभी-कभी विस्मृत हो जाता है।

दादाश्री : ऐसा नहीं कि कभी-कभी विस्मृत हो जाता है लेकिन कभी-कभी तो देखते हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, देखता हूँ।

दादाश्री : यदि उसे देखने का अभ्यास करोगे तो पूरे दिन समाधि रहेगी। जब एक घंटे के लिए यों ही ऐसे बाहर निकले तब शुद्धात्मा देखते-देखते जाएँ तो क्या कोई हमें डाँटेगा कि क्या देख रहे हो? इन आँखों से

रिलेटिव दिखाई देगा और अंदर की आँखों से शुद्धात्मा दिखाई देगा। ये दिव्यचक्षु हैं। आप जहाँ देखोगे वहाँ दिखाई देगा। लेकिन पहले उसका अभ्यास करना पड़ेगा, फिर सहज हो जाएगा। फिर अपने आप ही सहज रूप से दिखाई देगा। पहले का अभ्यास तो उल्टा था, इसलिए अब इसका अभ्यास करना पड़ेगा न? यानी कि कुछ दिनों तक हैन्डल मारना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : सुबह जब बाहर घूमने जाते हैं, तब 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ' यों बोलते हैं और फिर जब आसपास पेड़-पौधे वगैरह देखते हैं तब ऐसा बोल देते हैं कि 'शुद्धात्मा को नमस्कार करता हूँ', तो इन दोनों में से कौन सा ज़्यादा अच्छा है?

दादाश्री : वह जो भी बोलते हो, करते हो, वह सब ठीक है। जब धीरे-धीरे यह बोलना भी बंद हो जाएगा तो वह उससे भी अच्छा है। बोलना बंद हो जाएगा और अपने आप ही रहा करेगा।

प्रश्नकर्ता : तो इन दोनों में से कौन सा अच्छा है?

दादाश्री : दोनों। बोलना ज़रूरी नहीं है, फिर भी अगर बोलते हो तो अच्छा है। बोले बगैर, ऐसे ही नमस्कार नहीं किया जा सकता? लेकिन अंदर ही अंदर बोलने में भी कोई हर्ज नहीं है। मन में ऐसा बोले हो, तो भी कोई हर्ज नहीं है।

शुद्ध सामायिक की कीमत

पाँच वाक्यों (आज्ञा) में जितना रह पाओ उतना अवश्य ही रहना चाहिए और यदि न रहा जा सके तो भीतर थोड़ा-बहुत खेद रखना चाहिए कि 'ऐसे तो कैसे कर्म के उदय लेकर आए हैं जो हमें आज शांति से नहीं बैठने देते!' दादा की आज्ञा में रहने के लिए, कर्म के उदय का भी साथ चाहिए न? नहीं चाहिए? नहीं तो चलते-चलते एक घंटे तक शुद्धात्मा देखते-देखते जाना। इस तरह एक घंटा बिता देना। लो चलते-फिरते पुनिया श्रावक की सामायिक हो गई!

'अपनी' यह सामायिक करते हो, तब भी प्रकृति एकदम सहज कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : भगवान महावीर ने भी जिनकी सामायिक की प्रशंसा की है, उसमें क्या रहस्य है, वह ज़रा समझाइए।

दादाश्री : वह शुद्ध सामायिक थी। मनुष्य में ऐसी सामायिक करने का सामर्थ्य ही नहीं है न! शुद्ध सामायिक! मैंने आपको जैसी सामायिक दी है, वह दिव्यचक्षु सहित सामायिक थी।

वे पुनिया श्रावक घर में रहें या बाहर घूमे, फिर भी उन्हें शुद्ध सामायिक होती थी। उनकी वह सामायिक दिव्यचक्षु के आधार पर थी। वे रूई लाते थे और फिर उसकी पुनियाँ बनाकर बेचते थे, इसलिए वे पुनिया श्रावक कहलाते थे। पुनियाँ कातते समय उनका मन, तार में रहता था और चित्त भगवान में रहता था। इसके अलावा वे बाहर कुछ भी देखते-करते नहीं थे। दखल करते ही नहीं थे। मन को व्यवहार में रखते थे और चित्त को निश्चय में रखते थे। वह सर्वोच्च सामायिक कहलाती है।

यह अभ्यास बनाता है सहज

प्रश्नकर्ता : यों तो अधिकतर रियल-रिलेटिव रहता है लेकिन फिर कुछ समय बाद वापस चला जाता है, ऐसा होता रहता है।

दादाश्री : वह तो ऐसा है न, बहुत समय का उल्टा अभ्यास था इसलिए ऐसा होता रहता है। फिर यों करते-करते यह अपना अभ्यास मज़बूत हो जाएगा तो फिर सहज हो जाएगा। अनंत जन्मों से अभी तक उल्टा अभ्यास था। तो यह अभ्यास करते रहने से वैसा हो जाएगा। अभ्यास करना पड़ेगा। शुरू के पाँच-सात दिन तक अभ्यास करते रहने से फिर सहज हो जाएगा। पहले, बाहर रिलेटिव और रियल देखने का अभ्यास करना पड़ेगा। अभ्यास करने से फिर हो जाएगा।

जहाँ कर्ता और दृष्टा अलग, वहाँ सहजता

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, आप कहते हो न कि आपको सहज हो चुका है, फिर अभ्यास की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : इसे सहज इसलिए कहना चाहते हैं कि जो असहज हो चुका है, यदि वह सहज हो जाए, वही की वही क्रिया दोबारा हो और हमारे कुछ भी मेहनत किए बगैर हो जाए, तब हम जानेंगे कि ओहोहो, यह तो सहज हो गया। अत: सहज स्वरूप उत्पन्न हो गया। वर्ना सहज स्वरूप से नहीं हो सकता। यों चाय का प्याला लाया और ले गया, रखा और ऐसा सब किया, अभी भी वही सब होता है लेकिन वह चंदूभाई करते हैं, उसमें आपको क्या लेना-देना? आप चंदूभाई को जानते हो कि चंदूभाई ने ऐसा किया, वैसा किया। अब ऐसा असहज क्यों था? तो कहता है कर्ता था और ज्ञाता-दृष्टा था, दोनों खुद ही था। 'यह मैंने किया' और 'इसे मैंने जाना'। अरे भाई! वे दोनों धाराएँ अलग हैं, फिर उन्हें एक ही कर दी, मिला दी इन लोगों ने। उन कषायों का स्वाद आता है। इस संसार का स्वाद कैसा आता है? क्योंकि दो धाराएँ मिल गई इसलिए कषायों का स्वाद आता है और यदि दोनों अलग हो जाएँगी, तो मीठा लगेगा। अब उसका अलग हो जाना, उसी को सहज कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर अभ्यास से सब सहज हो जाएगा?

दादाश्री : ज्ञान लेने के बाद सहज होने की शुरुआत होती है। जो असहजता आ गई थी, वह सहज होने की शुरुआत होती है। भीतर में परिणाम सहज रहता है और बाहर इफेक्ट भी सहज रहता है। और खुद का परिणाम सहज होने की क्रिया में रहता है। अत: किसी भी जीव को किंचित्मात्र दु:ख न दें, इस तरह से सब रहता है।

शुद्ध उपयोग, वही पुरुषार्थ

प्रश्नकर्ता : एक ऐसी बात निकली थी कि जितना मज़बूत अनुभव अज्ञान का हुआ है, उतना मज़बूत अनुभव ज्ञान का होना चाहिए।

दादाश्री : ज्ञान का गाढ़ अनुभव होने के बाद फिर उपयोग नहीं रखना पड़ता है, अपने आप ही रहता है। जब तक गाढ़ अनुभव नहीं हुआ होगा तब तक उपयोग रखना पड़ेगा। उपयोग, वह पुरुषार्थ

कहलाता है और वह पुरुषार्थ पूर्ण तक कब पहुँचेगा? जब गाढ़ तक पहुँच जाएँगे तब पुरुषार्थ पूर्ण हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो जब अज्ञानता का अनुभव होता है तब उपयोग रखने की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : उपयोग तभी रखना पड़ता है न!

प्रश्नकर्ता : ताकि उस अनुभव के असर में खुद न आ जाएँ।

दादाश्री : यदि वापस खुद का उपयोग रखेगा न, तो अज्ञानता के अनुभव के असर में नहीं आएगा। वह समय खुद का कहलाता है, समयसार कहलाता है। वह समयसार के बगैर नहीं होता। वर्ना समयसार नहीं कहलाएगा, पर-समय कहलाएगा। आत्मा का जितना उपयोग रहा, उतना सब समयसार। जो समय 'स्व' में गया, वह सारा समयसार और जो समय 'पर' में गया, वह सारा पर-समय।

प्रश्नकर्ता : अज्ञान का अनुभव किसे होता है और ज्ञान का अनुभव किसे होता है?

दादाश्री : अज्ञान का अनुभव बुद्धि और अहंकार को होता है और ज्ञान का अनुभव प्रज्ञा को होता है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा जो बोलता है, उसे भी प्रज्ञा देखती है?

दादाश्री : बोलता है टेपरिकॉर्डर, लेकिन भाव प्रज्ञा का है।

प्रश्नकर्ता : तो वह सहज क्रिया प्रज्ञा की हुई?

दादाश्री : प्रज्ञा की सभी क्रियाएँ सहज ही होती हैं, स्वाभाविक ही होती हैं।

निरालंब बनाती है पाँच आज्ञा

यह आपको जो दिया है न, वह शुद्धात्मा पद है। अब जब से शुद्धात्मा पद मिला, तभी से मोक्ष होने की मुहर लग गई। शुद्धात्मा

पद प्राप्त होता है लेकिन 'शुद्धात्मा', वह शब्द का अवलंबन कहलाता है। जब निरालंब होगा, तब आत्मा ठीक से दिखाई देगा।

प्रश्नकर्ता : हाँ! तो वह निरालंब दशा कब आएगी?

दादाश्री : अब धीरे-धीरे निरालंब की ओर ही जा रहे हो। यदि हमारी आज्ञा के अनुसार चलोगे, तो निरालंब की ओर ही चल रहे हो। फिर धीरे-धीरे शब्द का अवलंबन छूट जाएगा और अंत में निरालंब होकर रहेगा। निरालंब अर्थात् फिर किसी की भी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। अगर सबकुछ चला जाए तो भी घबराहट नहीं होगी, भय नहीं लगेगा, कुछ भी नहीं होगा। किसी के अवलंबन की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। अब धीरे-धीरे आप उसी तरफ चल रहे हैं। अभी आप 'शुद्धात्मा हूँ', किया करो, उतना ही बहुत है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् आत्मदर्शन के बाद जो स्थिति आएगी, वह बिल्कुल निरालंब स्थिति ही हो सकती है न?

दादाश्री : निरालंब होने की तैयारियाँ होती रहती है। अवलंबन कम होते जाते हैं। अंत में निरालंब स्थिति प्राप्त होती है।

अर्थात् आप सभी मेरे पास शुद्धात्मा प्राप्त करते हो। अब शुद्धात्मा का *लक्ष* आपको अपने आप निरंतर ही रहता है, सहज रूप से रहता है, याद नहीं करना पड़ता, आपको चिंता-वरीज़ नहीं होती, संसार में क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं होते, तो भी वह मूल आत्मा नहीं है। आपको शुद्धात्मा (पद) प्राप्त हुआ है, इसका मतलब कि आप मोक्ष के पहले दरवाज़े में घुस गए हो। अतः आपका यह तय हो गया कि अब आप मोक्ष को प्राप्त करोगे। लेकिन मूल आत्मा तो इससे भी बहुत आगे है।

यह आपका शब्द का अवलंबन छूट जाएँ, इसके लिए, इन पाँच आज्ञा का पालन करने से धीरे-धीरे दर्शन दिखाई देगा। दिखाई देते-देते खुद के सेल्फ में ही अनुभव रहा करेगा। फिर शब्द की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। अर्थात् शॉर्ट कट में तो आ गए न!

❖❖❖❖❖

[2]

अज्ञ सहज - प्रज्ञ सहज

वह सहज भी प्राकृत सहज

प्रश्नकर्ता : आत्मा का जो ऐश्वर्य है, वह सहजपने से ही प्रकट होता होगा न?

दादाश्री : सहज रहने से ही, जितना सहज होगा उतना ऐश्वर्य प्रकट होगा। अब सहज तो फॉरेन वाले भी हैं। अपने बच्चे भी सहज हैं, लेकिन वह अज्ञान सहजता है। जबकि यह ज्ञानपूर्वक की सहजता रहेगी, तो वैसा होगा।

प्रश्नकर्ता : अज्ञान सहजता कम-ज़्यादा मात्रा में होती है?

दादाश्री : इन पुरुषों के मुकाबले, स्त्रियाँ (ज़्यादा) सहज हैं। यहाँ की स्त्रियों से ज़्यादा सहज फॉरेन वाले हैं और उनसे भी ज़्यादा, ये जानवर, पशु-पक्षी सभी (ज़्यादा) सहज हैं!

प्रश्नकर्ता : उन सभी की सहजता ज्ञान से है या अज्ञानता से?

दादाश्री : उनकी सहजता अज्ञानता से है। इन गाय-भैंसों की सहजता कैसी है? गाय उछलकूद करे, सींग मारने आए, फिर भी वह सहज है। सहज अर्थात् जो प्रकृति स्वभाव है, उसमें तन्मयाकार रहना, दखल नहीं करना, लेकिन यह अज्ञानता से सहज है।

अगर गाय के बछड़ों को पकड़ने जाएँ, तो उनकी आँखों में बहुत दु:ख जैसा दिखाई देता है, इसके बावजूद वे सहज हैं। इस सहज प्रकृति में जिस तरह भीतर 'मशीन' घूमती रहती है, उसी तरह

वह खुद मशीन की तरह घूमती रहती है। खुद के भले-बुरे का कुछ भी भान नहीं होता। मशीन भीतर हित दिखाए तो हित करती है, अहित दिखाए तो अहित करती है। यदि किसी का खेत देखा तो उस खेत में घुस जाती है।

प्रश्नकर्ता : उसमें वे कुछ भाव नहीं करते न?

दादाश्री : उन्हें तो '*निकाल*' करने का कुछ रहता ही नहीं न! वह तो उनका स्वभाव ही वैसा है, सहज स्वभाव! उनका बछड़ा चार-छः महीने का होने के बाद अगर बिछड़ जाए तो उन्हें कुछ असर नहीं होता। वे सिर्फ चार-छः महीने तक ही उनकी देख-भाल करती है। और अपने लोग तो...

प्रश्नकर्ता : मरते दम तक करते हैं?

दादाश्री : नहीं! सात पीढ़ियों तक करते हैं! गाय तो अपने बछड़े की देख-भाल छः महीने तक ही करती है जबकि फॉरेन के लोग (बच्चे) अठारह साल के हो जाए तब तक करते हैं और अपने हिन्दुस्तान के लोग तो सात पीढ़ियों तक करते हैं।

अर्थात् यह प्राकृत सहज चीज़ ऐसी है कि इसमें बिल्कुल भी जागृति नहीं रहती। भीतर से जो उदय आया, उस उदय के अनुसार भटकना, उसे सहज कहते हैं। जैसे कि यह लट्टू (टॉप्स) घूमता है, वह ऊपर जाता है, नीचे आता है, कई बार गिरने जैसा होता है, एक इंच ऊपर से भी कूदता है, तब हमें ऐसा लगता है कि 'अरे! गिरा, गिरा', इतने में तो वह फिर से बैठ जाता है, वह सहज कहलाता है।

एक्ज़ेक्ट सहजता, लेकिन अज्ञान दशा में

प्रश्नकर्ता : गाय-भैंस में भी अहंकार रहता है क्या?

दादाश्री : हाँ! अहंकार तो रहता ही है। अर्थात् अहंकार के बगैर तो उनका भी कुछ नहीं चलता न! लेकिन लिमिटेशन वाला होता है। उनका अहंकार कैसा होता है? चार्ज करे ऐसा नहीं, डिस्चार्ज होने वाला। अर्थात्

नया कार्य नहीं करता, पुराने कार्य का निबेड़ा लाता है। गाय-भैंसों में अहंकार का दखल नहीं होता। अगर वे किचन में खड़ी हो न, तो यूरिन-बाथरूम सब वहीं के वहीं, उन्हें ऐसा कुछ नहीं रहता कि यहाँ नहीं करना है। जिस टाइम पर जैसा उदय हो। जबकि अपनी बुद्धि ज़्यादा चलती है।

प्रश्नकर्ता : ऐसे बुद्धि जागृत रखती है।

दादाश्री : हाँ! यहाँ पर विवेक उत्पन्न होता है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वहाँ उनमें विवेक नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : विवेक बुद्धि से ही होता है या साहजिक भी हो सकता है?

दादाश्री : हाँ! बुद्धि से। बुद्धि के बगैर नहीं होता। बुद्धि के प्रकाश से ही विवेक रहता है।

प्रश्नकर्ता : विवेक बुद्धि के प्रकाश से, और विनय?

दादाश्री : विनय भी बुद्धि के प्रकाश से ही।

प्रश्नकर्ता : दोनों बुद्धि के प्रकाश से ही हैं।

दादाश्री : और परम विनय, वह ज्ञान के प्रकाश से।

अंतर, अज्ञ सहज और प्रज्ञ सहज में

प्रश्नकर्ता : प्राणियों का भी सहज स्वभाव होता है और ज्ञानियों का भी सहज स्वभाव होता है, तो उन दोनों में क्या अंतर हैं?

दादाश्री : प्राणियों का, बच्चों का और ज्ञानियों का, इन तीनों का स्वभाव सहज होता है। जहाँ बुद्धि बहुत होती है, वहाँ पर सहज स्वभाव नहीं रहता। जहाँ पर लिमिटेड बुद्धि होती है, वहाँ सहज स्वभाव होता है। बच्चों में लिमिटेड बुद्धि, प्राणियों में लिमिटेड बुद्धि और ज्ञानी में तो बुद्धि खत्म ही हो चुकी होती है इसलिए ज्ञानी तो एकदम सहज होते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दोनों में अंतर क्या है, ज्ञानी में और बच्चों में?

दादाश्री : बच्चों में अज्ञानता से और ज्ञानी में सज्ञानता से हैं। बच्चों में अंधेरे में और इनमें प्रकाश में। प्रकाश के बगैर तो इंसान सहज नहीं रह सकता न! अर्थात् जब बुद्धि जाएँ तब सहज रह सकता है वर्ना, इमोशनल हुए बगैर नहीं रहता। बुद्धि इमोशनल ही करवाती है। जब तक जड़ता रहती है तब तक इमोशनल नहीं होता। कितने लोगों को तो हम डाँटते रहते हैं फिर भी वह विचलित नहीं होता। लेकिन कैसे विचलित होगा? अभी तक बात उन तक पहुँची ही नहीं है! जबकि बुद्धिशालियों को तो बोलने से पहले ही बात समझ में आ जाती है। सोचते ही बात उन तक पहुँच जाती है।

ज्ञानीपुरुष और बालक दोनों एक समान कहलाते हैं। सिर्फ अंतर क्या है, बालक का उगता हुआ सूर्य है और ज्ञानीपुरुष का डूबता हुआ सूर्य है। बालक में अहंकार है लेकिन अभी उसका अहंकार जागृत होना बाकी है जबकि इनका अहंकार शून्य हो चुका है।

जागृति के स्टेपिंग

पहले *पुद्गल* में जागृति आनी चाहिए। आत्मा का भान होने के बाद *पुद्गल* में सोता है, फिर आत्म जागृति उत्पन्न होती है। क्या दूध गिरने पर छोटे बच्चे किच-किच करते हैं? नहीं! किसलिए? तब कहें, 'अज्ञान के कारण ही'। फिर जैसे-जैसे वे बड़े होते जाते हैं वैसे-वैसे *पुद्गल* की जागृति आती जाती है और तब वे किच-किच करना शुरू करते हैं। उसके बाद आत्म जागृति की बात आती है।

जागृति किसे कहेंगे? खुद अपने आप से कभी भी, किसी भी संयोग में क्लेशित नहीं हो तभी से जागृति की शुरुआत होती है फिर दूसरे 'स्टेपिंग' में, दूसरों से भी खुद क्लेशित नहीं हो, वहाँ से लेकर ठेठ सहज समाधि तक की जागृति रहती है। अगर जाग चुके हैं तो जागने का फल मिलना चाहिए। यदि क्लेश हो, तो कैसे कह सकते

हैं कि जाग गए हैं? किसी को ज़रा सा भी दु:ख दें, तो वह जागृत कैसे कहलाएगा? क्लेश रहित भूमिका बनाना, वह उच्च प्रकार का पुरुषार्थ कहलाता है।

जागृत व्यक्ति तो ग़ज़ब का होता है! मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, अंत:करण के चारों भाग के हर एक कार्य के समय हाज़िर रहे, उसे जागृति कहते हैं!

जितना कषाय उग्र, उतना असहज

प्रश्नकर्ता : हिन्दुस्तान में क्रोध-मान-माया-लोभ का प्रमाण फॉरेनर्स से ज़्यादा दिखाई देता है।

दादाश्री : हिन्दुस्तान में सब से ज़्यादा क्रोध रहता है, सब से ज़्यादा लोभ और कपट रहता है, वह फुल्ली डेवेलप कहलाता है। फॉरेन वालों को तो कपट करना ही नहीं आता। फॉरेन वाले साहजिक होते हैं जबकि यहाँ के विकल्पी होते हैं।

अपने यहाँ की स्त्रियाँ सहज हैं, फिर भी फॉरेन के पुरुषों से हज़ार गुना जागृत होती हैं। वहाँ के लोगों की सहजता कैसी है? वे तो कैसे हैं? जैसे कि, मरकही (मारने वाली) गाय हो, उसे कुछ भी नहीं करें तो भी वह सींग मारती रहती है। जबकि मरकही गाय नहीं हो, तो उसके सींगों को कितना भी हिलाते रहेंगे, तो भी वह कुछ नहीं करेगी। फॉरेन में जेब काटने वाले, लुटेरे हो, वे उतना ही काम करते रहते हैं और जो भला इंसान है वह भलाई ही करता रहता है, उसे लूटने का विचार ही नहीं आता। जबकि यहाँ पर तो यदि चाचा के बेटे से गाड़ी माँगी हो, तो वह हिसाब करेगा कि आने के 15 माइल, जाने के 15 माइल, पेट्रोल के इतने रुपए, इतने माइल के लिए चाहिए। इसके अलावा सभी पार्ट्स घिस जाएँगे और उतने टाइम के लिए मेरी गाड़ी का उपयोग कोई दूसरा करेगा। अगर गाड़ी में कुछ बिगड़ जाएगा तो? एक क्षण में तो तरह-तरह के कैल्क्यूलेशन करके कहेगा कि, मेरे सेठ आने वाले हैं, तो मैं गाड़ी नहीं दे पाऊँगा। खुद का नुकसान समझ

जाता है और तुरंत ही बात पलट देता है, यही फुल्ली डेवेलप की निशानी है। इनका व्यवहार भले ही खराब दिखे, पूरी दुनिया में खराब व्यवहार दिखे लेकिन वही फुल्ली डेवेलप हैं। वे फॉरेन वाले जैसे-जैसे डेवेलप होंगे वैसे-वैसे वे भी विकल्पी हो जाएँगे।

ये फॉरेन के लोग अगर बगीचे में बैठे हो तो, आधे-आधे घंटे तक हलचल किए बगैर बैठे रहते हैं! जबकि अपने लोग तो धर्म स्थलों में भी हलचल मचा देते हैं! क्योंकि आंतरिक चंचलता है।

फॉरेन के लोगों की चंचलता पाव और मक्खन में रहती है। और यहाँ के लोगों की चंचलता सात पीढ़ियों की चिंता में रहती है!

प्रश्नकर्ता : उन लोगों में भी लोभ रहता है न?

दादाश्री : वह लोभ नहीं कहा जाता। वहाँ के तो गिने-चुने लोग ही लोभी हैं। लॉर्ड या ऐसा कोई हो, वह! यहाँ के तो मज़दूर भी लोभी होते हैं और यदि वहाँ के लोगों से कहे कि, 'प्लीज़, हेल्प मी! मेरे पास तो इतने दूर जाने के लिए पैसे भी नहीं हैं!' वे साहजिक लोग तुरंत ही खुद ड्राइविंग करके, खुद के पैसे से उसे छोड़ आएँगे।

तब अपने यहाँ लोग कहते हैं, फॉरेन वाले तो बहुत अच्छे, बहुत अच्छे! अरे, साहजिक का क्या बखान करना? जो नालायक होगा वह तो मारकर ले लेगा और अगर अच्छा होगा तो दे देगा। उसे लेने का विचार ही नहीं आएगा, क्योंकि वह साहजिक है जबकि यहाँ के लोगों का तो तुरंत ही चक्कर चलेगा। वह कुछ अलग करेगा। यह तो इन्डियन है, इसका लोभ तो सात पीढ़ियों तक रहता है लेकिन अभी की जनरेशन में लोभ कम हो गया है। उन फॉरेन वालों में, अगर विलियम और मेरी कमाते हो तो वे माँ-बाप से अलग रहते हैं। जबकि अपने यहाँ तो बेटा कमाए और मैं खाऊँ, बेटा मेरा नाम करेगा। क्योंकि आध्यात्मिक में फुल्ली डेवेलप हैं, भले ही भौतिक में अन्डरडेवेलप हैं। वे फॉरेन वाले भौतिक में फुल्ली डेवेलप्ड हैं।

प्रश्नकर्ता : और हिन्दुस्तान के लोग?

दादाश्री : हिन्दुस्तान के लोग असहज हैं, इसलिए ज़्यादा चिंता है। क्रोध–मान–माया–लोभ बढ़ गए हैं, इसलिए चिंता बढ़ गई है। वर्ना कोई मोक्ष में जाए ऐसा नहीं है, बल्कि कहेगा, 'हमें मोक्ष में नहीं जाना है, यहाँ बहुत अच्छा है।' इन फॉरेन के लोगों से कहें कि 'चलो मोक्ष में'। तब वे कहेंगे, 'नहीं, नहीं, हमें मोक्ष की कोई ज़रूरत नहीं हैं'।

अहंकारी विकल्पी : मोही साहजिक

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि पुरुषों के मुकाबले स्त्रियाँ ज़्यादा सहज होती हैं।

दादाश्री : स्त्री जाति को बहुत विकल्प खड़े नहीं होते। स्त्रियों में सहज भाव ज़्यादा होता है। यदि अहंकार हो तो विकल्प होते हैं। अहंकार तो हर एक में होता है लेकिन स्त्रियों में बहुत कम होता है। मोह ज़्यादा होता है।

अगर सेठ की दुकान का दिवाला निकलने वाला हो, और यदि कोई भिक्षुक आए, तो भी सेठानी, उसे साड़ी देती है, और भी कुछ देती है जबकि यह सेठ तो एक पैसा भी नहीं देता। बेचारे सेठ को तो अंदर ऐसा होता है कि अब क्या होगा? क्या होगा? जबकि सेठानी तो आराम से साड़ी–वाड़ी देती है, वह सहज प्रकृति कहलाती है। भीतर जैसा विचार आए वैसा कर देती है। यदि सेठ को भीतर विचार आए कि 'लाओ, दो हज़ार रुपए धर्म में दान करे।' तो तुरंत ही फिर मन में कहेगा, 'अब दिवाला निकलने वाला है, तो क्या दें? अब छोड़ो न!' ऐसा करके उड़ा देता है!

सहज तो मन में जैसा विचार आए वैसा ही करता है। अर्थात् अगर भीतर उदय आए, तो माफी माँग लेता है या न भी माँगे लेकिन यदि आप माँग लेंगे तो वह भी तुरंत माँग लेगा। आप उदयकर्म के अधीन नहीं रहोगे, आप जागृति के अधीन रहोगे और यह उदयकर्म के अधीन रहेगा। वह सहज कहलाएगा न? आप में सहजता नहीं आएगी। यदि सहज हो जाओगे तो बहुत सुखी रहोगे।

अज्ञ सहज - असहज - प्रज्ञ सहज

प्रश्नकर्ता : पहले किसका मोक्ष होता है? सहज का होता है या असहज का?

दादाश्री : फॉरेन वाले, सहज (लोगों) को तो यहाँ आना पड़ेगा। इस गर्मी में आना पड़ेगा। यह, सौ टच के सोने का शुद्धिकरण (करने) का कारखाना है। हिन्दुस्तान अर्थात् दिन-रात भट्ठी में!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् ऐसा हुआ न, कि सहजता में से असहजता में जाता है फिर जब असहजता 'टॉप' पर जाती है, उसके बाद मोक्ष की तरफ जाता है?

दादाश्री : असहजता में 'टॉप' पर जाने के बाद जलन को पूरी तरह से देखें, अनुभव करें, तब मोक्ष में जाने का निश्चय करता है। बुद्धि, आंतरिक बुद्धि बहुत बढ़नी चाहिए। फॉरेन के लोगों में बाह्य बुद्धि रहती है, वह सिर्फ भौतिक का ही दिखाती है। नियम कैसा है, कि जैसे-जैसे आंतरिक बुद्धि बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे दूसरे पलड़े में जलन बढ़ती जाती है!

प्रश्नकर्ता : असहजता में 'टॉप' पर जाने के बाद, सहजता में आने के लिए क्या करता है?

दादाश्री : फिर रास्ता ढूँढ निकालता है, कि इसमें सुख नहीं है। इन स्त्रियों में सुख नहीं है, बच्चे में सुख नहीं है। पैसे में भी सुख नहीं है, इस तरह से उनकी भावना बदलती है! ये फॉरेन के लोग तो, स्त्री में सुख नहीं है, बच्चे में सुख नहीं है ऐसा तो कोई बोलता ही नहीं है न। यह तो (अपने लोगों में) जब जलन पैदा होती है, तब कहते हैं कि अब यहाँ से भागो, जहाँ कुछ मुक्त होने की जगह है। जहाँ अपने तीर्थंकर मुक्त हुए हैं, वहाँ चलो। हमें यह नहीं पुसाता।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् उस समय उनका भाव बदलना चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : अगर भाव नहीं बदलेगा, तो हल ही नहीं आएगा! ये देरासर में जाते हैं, महाराज के पास जाते हैं, वह तो भाव बदले बगैर तो कोई जाएगा ही नहीं न!

उदयाकार, वह उल्टी साहजिकता

प्रश्नकर्ता : ज्ञान के बाद की साहजिकता कैसी होती है, वह समझाइए न!

दादाश्री : जितना उदय में आए, उतना ही करता है। *पोतापणुं* नहीं रखता। जबकि अज्ञान साहजिक, वह *पोतापणुं* सहित होता है। पतंग उड़ाने गया, वह साहजिक। दादा ने मना किया, उसे नहीं जाना था, फिर भी गया...

प्रश्नकर्ता : तो वह दादा की आज्ञा के विरुद्ध गया, ऐसा कहा जाएगा न?

दादाश्री : क्या विरुद्ध भी साहजिक कहलाएगा? भैंस बना देती है, ऐसी साहजिकता।

प्रश्नकर्ता : भैंस बनाती है?

दादाश्री : फिर क्या होगा? शरीर तो मोटा मिलेगा!

❖❖❖❖❖

[3]

असहज का मुख्य गुनहगार कौन?

जितना खुद ज्ञान में उतनी ही प्रकृति सहज

प्रश्नकर्ता : आप से आत्मा का ज्ञान लिया है तो प्रकृति सहज हो जानी चाहिए या नहीं?

दादाश्री : वह तो सहज होती ही जाएगी। अगर खुद इस ज्ञान में रहेगा तो सहज ही है! आत्मा सहज ही है, इस देह को सहज बनाना है। जब तक 'आप' असहज रहोगे तब तक वह असहज रहेगी। यदि 'आप' सहज हो जाओगे तो वह तो सहज ही है। आपको सिर्फ सहज होने की ही ज़रूरत है। सहज क्रिया वाला ज्ञान दिया है।

इसमें राग-द्वेष किसे?

प्रश्नकर्ता : यदि हमारी प्रकृति बहुत राग-द्वेष करे तो उसका *निकाल* कैसे करना चाहिए?

दादाश्री : स्थूल प्रकृति राग-द्वेष वाली है ही नहीं। वह तो *पूरण-गलन* स्वभाव वाली है। यह राग-द्वेष तो अहंकार करता है। इसे जो अच्छा लगता है उस पर राग करता है और यदि अच्छा नहीं लगता तो द्वेष करता है। प्रकृति तो अपने स्वभाव में है। सर्दी के दिनों में ठंड पड़ती है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : पड़ती है।

दादाश्री : यदि उसे वह अच्छा नहीं लगे तो उसे द्वेष होता है। कितनों को तो इसमें मज़ा आता है। नहीं आता क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है।

दादाश्री : ऐसा है। प्रकृति को सर्दी के दिनों में ठंड लगती है, गर्मी के दिनों में गर्मी लगती है। मतलब अहंकार ये सारे राग-द्वेष करता है। यदि अहंकार चला जाए तो राग-द्वेष चले जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् ज्ञान मिलने के बाद प्रकृति ऑटोमैटिक सहज होती ही जाती है न?

दादाश्री : हाँ, ज्ञान मिलने के बाद प्रकृति अलग हो गई लेकिन डिस्चार्ज रूप में है। वह धीरे-धीरे डिस्चार्ज होती रहेगी। जो चार्ज हो चुकी है, वह डिस्चार्ज होती रहेगी। जीवित अहंकार के बगैर ही डिस्चार्ज होती रहती है, अपने आप ही। उसे हम 'व्यवस्थित' कहते हैं।

असहजता, राग-द्वेष के स्पंदन से...

प्रश्नकर्ता : आपने बताया कि प्रकृति राग-द्वेष वाली नहीं है लेकिन अहंकार राग-द्वेष करता है, वह कैसे?

दादाश्री : प्रकृति स्वभाव से सहज ही है। जैसे कि कोई गुड़िया, कब तक बोलती है और गाना गाती है? जब तक हम उसमें चाबी भरते हैं, तब तक। अगर चाबी देना बंद कर दें तो?

प्रश्नकर्ता : हमें जो चाबी देनी है, वह क्या कहलाएगा?

दादाश्री : अज्ञानता से व्यवहार आत्मा में स्पंदन होते रहते हैं। 'यह मुझे अच्छा लगा और यह मुझे अच्छा नहीं लगा, यह ऐसा है और वैसा है,' ऐसे जो स्पंदन होते रहते हैं, उनसे प्रकृति पर असर होता है। प्रतिष्ठित आत्मा असहज हो जाता है।

व्यवहार आत्मा के सहज हो जाने के बाद देह सहज हो जाएगी। उसके बाद हमारे जैसा मुक्त हास्य उत्पन्न होगा।

ज्ञान के बाद प्रतिष्ठित आत्मा निकाली

प्रश्नकर्ता : इस प्रतिष्ठित आत्मा के बारे में समझाइए?

दादाश्री : ज्ञान के बाद, एक तो मूल आत्मा है और यह जो डिस्चार्ज अहंकार है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है, पूर्वजन्म का। अज्ञानता में जो जीवित अहंकार है वह प्रतिष्ठा करता है। 'मैं कर रहा हूँ और मेरा है।' उस तरह नई प्रतिष्ठा करने से वह चक्र चलता ही रहता है। हम वह प्रतिष्ठा बंद करवा देते हैं। उससे अपना चार्ज होना बंद हो जाता है। यदि प्रतिष्ठा बंद हो जाए तो समझो सब बंद हो गया! नया संसार खड़ा होना बंद हो गया।

प्रश्नकर्ता : नया संसार खड़ा होना बंद हो गया फिर वह जो विभाग बाकी बचा, उसी को हम प्रतिष्ठित आत्मा मानते हैं न?

दादाश्री : हाँ! और अब जो है, उसका *निकाल* (निपटारा) कर देंगे। 'वह' *निकाल* होने के लिए ही आया है, उसका *निकाल* करना है।

दखल होने की वजह से असहज

प्रश्नकर्ता : *निकाल* होने में जो दखल करता है, क्या वही निश्चेतन चेतन है?

दादाश्री : उसमें जो दखल करता है न, वह निश्चेतन चेतन नहीं है, वह मृत अहंकार (व्यवहार आत्मा) है। हाँ, लेकिन उसमें दखल करके वह बिगाड़ता है। बाकी, वह तो अपने आप *निकाल* होने के लिए ही आया है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर प्रतिष्ठित आत्मा के रूप में जो अलग हुआ है, यदि उसमें किसी भी प्रकार की दखल नहीं करेंगे तो अपने आप ही *गलन* हो जाएगा?

दादाश्री : हाँ, अपने आप ही सहज रूप से छूट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यदि दखल करेगा, तो क्या उसमें बखेड़ा होता रहेगा?

दादाश्री : बस, वह पिछला अहंकार दखल करता है। मृत अहंकार दखल करता है और उस मृत अहंकार को बुद्धि प्रोत्साहन

देती है, बस बुद्धि परेशान करती है। वर्ना, सहज भाव से (कर्म बंधन) खुलते ही जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार आत्मा किसे कहते हैं ?

दादाश्री : संसार अर्थात् क्या है ? कि व्यवहार आत्मा दखलंदाज़ी करने में पड़ गया। और देह का स्वभाव कैसा है ? सहज है। अगर व्यवहार आत्मा दखलंदाज़ी नहीं करेगा, तो देह सहज ही है। देह भी मुक्त और आत्मा भी मुक्त। यह दखलंदाज़ी की वजह से बंध गया है। इसलिए हम दखलंदाज़ी बंद करवा देते हैं। तू यह (चंदूभाई) नहीं है, तू आत्मा है इसलिए वह दखलंदाज़ी बंद कर देता है। अहंकार, ममता चले गए। अब, जितनी दखलंदाज़ी बंद कर देगा उतना तू वह (आत्मा) रूप हो जाएगा, सहज रूप। सहज अर्थात् दखलंदाज़ी नहीं! यह अपने आप चल रहा है और वह भी अपने आप चल रहा है, ये दोनों अपने-अपने तरीके से ही चलते रहते हैं।

व्यवहार आत्मा अपने स्वभाव में रहता है और यह देह अपने स्वभाव में रहता है। देहाध्यास चले जाने की वजह से दोनों का जो संधिस्थान था एकाकार होने का, वह देहाध्यास चला गया। इसीलिए देह अपने काम में और आत्मा अपने काम में रहता है। उसी को सहजता कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : भाव तो प्रतिष्ठित आत्मा ही करता है न, दादा ? शुद्धात्मा तो करता ही नहीं न ?

दादाश्री : वास्तव में प्रतिष्ठित आत्मा भाव करता ही नहीं है न! शुद्धात्मा भी भाव नहीं करता। यह तो जो ऐसा मानता है कि 'मैं चंदूभाई हूँ', वह व्यवहार आत्मा भाव करता है। प्रतिष्ठित आत्मा तो भाव से ही बना है न! यदि भाव नहीं होता तो प्रतिष्ठित आत्मा होता ही नहीं।

यदि 'व्यवहार आत्मा' सहज, तो देह सहज

आत्मा की सहजता तो, मूल आत्मा तो खुद सहज ही है। अगर

बाहर वाला सहज हो जाए न, तो खुद सहज ही है। बाहर वाला सहज नहीं होता न!

प्रश्नकर्ता : अभी भी यह ठीक से समझ में नहीं आया।

दादाश्री : अगर आत्मा सहज हो जाएगा तो शरीर अपने आप सहज हो जाएगा, यानी वह क्या कहता है? यदि यह व्यवहार आत्मा सहज हो जाए तो शरीर सहज हो ही जाएगा लेकिन मूल आत्मा तो सहज ही है। यह सारी झंझट इस व्यवहार आत्मा की ही है।

असहजता के लिए ज़िम्मेदार कौन?

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा कहा कि आत्मा भी सहज है और प्रकृति भी सहज है।

दादाश्री : नहीं! वह तो समकित होने के बाद। इस मिथ्यात्व की वजह से प्रकृति असहज हो जाती है।

प्रकृति तो अपना फोटो है। आइने में देखने पर मुँह चढ़ा हुआ दिखाई देता है। वह प्रकृति है, तो क्या प्रकृति का दोष है?

प्रश्नकर्ता : प्रकृति का ही दोष है।

दादाश्री : नहीं! भीतर व्यवहार आत्मा में स्थिरता, सहजता नहीं आई है। यदि व्यवहार आत्मा सहज हो जाए तो प्रकृति सहज हो जाती है, उसका मुँह वगैरह सब अच्छा दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, आत्मा सहज नहीं हुआ है, यदि मुँह चढ़ा हुआ है, तो जिस आत्मा की आपने बात की, वह प्रतिष्ठित आत्मा है न?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा है वह बात सही है, लेकिन प्रतिष्ठित आत्मा अर्थात् व्यवहार आत्मा। जब तक प्रतिष्ठित आत्मा का चलन है न, तब तक व्यवहार आत्मा का ही दोष माना जाएगा। प्रतिष्ठित आत्मा प्रतिनिधि के समान है इसलिए अंत में ज़िम्मेदारी उसी की होगी। किसकी होगी?

प्रश्नकर्ता : मूल की।

दादाश्री : नहीं। वह (मूल) खुद ऐसा नहीं है लेकिन उसके प्रतिनिधि ऐसा करते हैं। इसका जोखिम किसके सिर?

प्रश्नकर्ता : अगर दोष हो रहा है, तो प्रतिष्ठित आत्मा का ही दोष हो रहा है न?

दादाश्री : वास्तव में दोष व्यवहार आत्मा को लगेगा, लेकिन मूल आत्मा तक तो पहुँचेगा ही नहीं न!

यदि व्यवहार आत्मा खुद शुद्धात्मा बन जाएगा तो स्पंदन होना बंद हो जाएँगे और स्पंदन बंद हो गए तो धीरे-धीरे प्रकृति सहजता में आ जाएगी। दोनों सहजता में आ जाएँगें, उसे कहेंगे वीतराग।

सहजता में पहला कौन?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान हो जाने के बाद प्रकृति सहज होती है या जैसे-जैसे प्रकृति सहज होती जाती है वैसे-वैसे ज्ञान प्रकट होता जाता है, इसका क्रम क्या है?

दादाश्री : जब हम यह ज्ञान देते हैं न, तब दृष्टि बदल जाती है और उसके बाद प्रकृति सहज होती जाती है। उसके बाद संपूर्ण सहज हो जाती है। प्रकृति बिल्कुल सहज हो जाती है और आत्मा तो सहज ही है। बस, फिर हो गया, अलग हो गया। यदि प्रकृति सहज हो जाएगी फिर बाहर वाला भाग ही भगवान बन जाएगा, अंदर वाला तो है ही। अंदर का तो सभी में है।

अगर प्रकृति सहज हो जाए तो आत्मा सहज हो ही जाएगा। और आत्मा के सहज होने का प्रयत्न होगा तो प्रकृति सहज हो जाएगी। दोनों में से एक भी सहज की तरफ चला तो दोनों सहज हो जाएँगे।

इस काल में प्रकृति सहज नहीं हो सकती। इसलिए 'हम' सहज आत्मा दे देते हैं और साथ-साथ प्रकृति की सहजता का ज्ञान भी दे

देते हैं। उसके बाद प्रकृति को सहज करना बाकी रहता है। इस काल में ऐसा है कि अगर आत्मा सहज स्वभाव में आ जाए तो प्रकृति सहज स्वभाव में आ जाएगी।

प्रश्नकर्ता : हमारी प्रकृति जितनी असहज होती है...

दादाश्री : उसमें कोई हर्ज नहीं। यह प्रकृति तो आपने मुझसे मिलने से पहले भरी है।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति सहज होनी चाहिए या नहीं?

दादाश्री : वह तो, अगर खुद इस ज्ञान में रहेगा तो सहज हो ही जाएगी।

प्रकृति का *निकाल* होता ही रहता है। अपने आप ही *निकाल* हो जाएगा और नई प्रकृति तो मेरी हाज़िरी में भरी जा रही है। यदि किसी की ज़रा भारी होगी तो एकाध जन्म ज़्यादा लगेगा, एक-दो जन्मों में तो सबकुछ खत्म हो ही जाएगा। यह सब मल्टिप्लिकेशन वाला है।

प्रश्नकर्ता : आपकी दृष्टि से तो यह सब शुद्ध ही भरा जा रहा है या नहीं? हमारी दृष्टि तो बदल गई है लेकिन जो नई प्रकृति बनेगी वह सीधी बनेगी या नहीं?

दादाश्री : अब शंका रखने का कोई कारण ही नहीं है न! अब, अगर आप चंदूभाई बन जाओ तो आप शंका रख सकते हैं। वह तो आपकी श्रद्धा में है ही नहीं न!

ज्ञानी, प्रकृति से अलग

प्रश्नकर्ता : ज्ञान होने के बाद समझ बढ़ती है लेकिन प्रकृति का नाश थोड़े ही हो जाता है?

दादाश्री : नहीं! प्रकृति काम करती ही रहती है। ज्ञानी में भी प्रकृति होती है लेकिन वह अलग रहती है ज्ञानी से, ज्ञानी से हन्ड्रेड परसेन्ट अलग रहती है।

वे ज्ञानी क्यों कहलाते हैं? क्योंकि सहज स्वरूप देह और सहज स्वरूप आत्मा, दोनों सहज स्वरूप। दखल नहीं करते। दखल करना, वह असहजता है।

प्रकृति में मठिया या उसका स्वाद?

प्रश्नकर्ता : दादा, वहाँ आपकी प्रकृति कैसे काम करती है?

दादाश्री : हमारी प्रकृति मठिया (मौठ के तीखे-मीठे पापड़) खाती है, यह बात सभी महात्माओं को पता चल गई। तो अमरीका में जहाँ भी जाए, वहाँ पर मेरे लिए मठिया बनाकर रखते थे लेकिन इस वर्ष सिर्फ दो ही लोगों के यहाँ खाए हैं, बस। जो माफिक आए, वह प्रकृति। सभी के घर माफिक नहीं आता। मैं थोड़ा सा खाकर रहने देता था। इसलिए यदि कोई ऐसा कहे कि इन्हें मठिया पसंद हैं तो वह बात मानने में नहीं आएगी। मठिये में रहा हुआ स्वाद है मेरी प्रकृति में।

नीरू माँ : दादा, यह तो कैसा है कि आपकी प्रकृति को अभी भाया फिर एक महीने बाद न भी भाए, बदल जाता है।

दादाश्री : अरे! तीन दिन में ही बदल जाता है, एक दिन में भी बदल जाता है। आज पराठा भाया और कल न भी भाए।

नीरू माँ : न भी भाए।

दादाश्री : आपने कब इसकी स्टडी की?

नीरू माँ : दादा को देखूँ तो स्टडी हो जाती है। सहज प्रकृति किस तरह से काम करती है, वह दादा का देखें तभी पता चलता है।

दादाश्री : नाश्ता आए तो देख-देखकर लेती है, लेकिन इसमें ऐसा क्या अलग है? तब कहती है, किस पर ज़्यादा मिर्च लगी है? इसी को कहते हैं प्रकृति।

प्रकृति को रचने वाला कौन?

किस तरह की प्रकृति नहीं होती, प्रकृति तो तरह-तरह की होती

है। जब बारिश हो तब बुलबुले कौन बनाता होगा? कोई इतना बड़ा होता है, कोई इतना होता है, कोई इतना होता, ऐसे प्रकृति बंध जाती है। कितने ही बड़े होकर यहीं के यहीं फूट जाते हैं, कितने तो बहुत दूर तक चलते हैं, इसी तरह से सारी प्रकृति बंध जाती है। संयोग के अनुसार प्रकृति बंध जाती है और प्रकृति के अनुसार संसार चलता है।

यह प्रकृति है, अगर आप उसे देखते रहो तो कुछ भी हर्ज़ नहीं है। आपकी ज़िम्मेदारी का हर्ज़ नहीं है। आपकी देखने की इच्छा होनी चाहिए, उसके बावजूद भी देखने में नहीं आता, तो फिर आपकी ज़िम्मेदारी नहीं है।

जब प्रकृति को संपूर्ण रूप से जान लें, तब भगवान बन जाता है। प्रकृति में एकाकार नहीं हुआ अर्थात् उसे जाना, वर्ना यदि प्रकृति में एकाकार हो जाए तो जान नहीं सकता, तभी से बंधन है। अगर उसे प्रकृति समझ में आ जाए तो वह मुक्त हो जाएगा।

अलग रहकर देखे तो साहजिक

प्रश्नकर्ता : आप्तसूत्र में ऐसा है कि प्रकृति और आत्मा के बीच की चंचलता खत्म हो गई, उसे साहजिकता कहते हैं।

दादाश्री : बस।

प्रश्नकर्ता : यह बीच की का मतलब क्या है?

दादाश्री : इमोशनल होता है, उसमें प्रकृति इमोशनल नहीं है, अगर 'खुद' उसमें एकाकार हो जाए तो इमोशनल हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : खुद का मतलब, अहम् प्रकृति में एकाकार होता है इसलिए यह...

दादाश्री : एकाकार होता है इसलिए चंचलता उत्पन्न हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह खुद की चंचलता चली जानी चाहिए?

दादाश्री : अब, यदि अलग रहकर देखे तो साहजिक होगा।

जहाँ इफेक्ट को आधार, वहाँ कॉज़

प्रश्नकर्ता : अहम् किस तरह से एकाकार होता है?

दादाश्री : प्रकृति में 'इफेक्ट' तो अपने आप ही होता रहता है लेकिन खुद अंदर 'कॉज़ेज़' करता है, आधार देता है कि 'मैंने किया, मैं बोला'। वास्तव में तो 'इफेक्ट' में किसी को करने की ज़रूरत ही नहीं है। 'इफेक्ट' अपने आप सहज रूप से होता ही रहता है लेकिन हम उसे आधार दे देते हैं कि 'मैं कर रहा हूँ', वह भ्रांति है और वहीं 'कॉज़ेज़' हैं।

प्रश्नकर्ता : उस 'कॉज़' का कॉज़ क्या है?

दादाश्री : अज्ञानता। 'रूट कॉज़' अज्ञानता है। 'ज्ञानीपुरुष' अज्ञानता दूर कर देते हैं।

ज्ञाता-दृष्टा रहने से बनता है सहज

सहज प्रकृति अर्थात् जिस प्रकार से लपेटा हो उसी प्रकार से घूमती रहती है और अन्य कोई झंझट नहीं।

ज्ञान दशा की सहजता में तो, अगर आत्मा इसका ज्ञाता-दृष्टा रहेगा तो ही वह सहज होगा और यदि उसमें दखल करे तो फिर से बिगड़ेगा। 'ऐसा हो तो अच्छा, ऐसा न हो तो अच्छा'। इस तरह दखल करने से असहज हो जाता है।

शुद्धात्मा के अलावा कौन सा भाग रहा? प्रकृति रही। वह गुनहगार है। प्रकृति जो कुछ भी करे, उसमें यदि हम कहें 'तू जोश से करना', तो ऐसा भी नहीं कहना चाहिए और 'मत करना' वैसा भी नहीं कहना चाहिए। हमें ज्ञाता-दृष्टा रहना है, तो 'व्यवस्थित' है।

खेंच-चिढ़-राग, बनाते हैं असहज

दोनों रमणता चलती रहे, उसे सहजता कहते हैं। और भीतर ऐसे खींचते रहे कि यह नहीं ही होगा और खींचना अर्थात् भीतर

खींचना, ब्रेक मारना कि हम से यह नहीं होगा यानी सबकुछ असहज हो गया। अगर वहाँ पर खींचेगे नहीं तो सब ठीक हो जाएगा, काम हो जाएगा। अब यह भी ऐसा नहीं है कि इसकी ज़रूरत है, ऐसा कुछ नहीं है। यह तो सहज होने तक ही है। अगर पूछे, क्यों असहज हुए थे? तब कहेंगे, 'इसकी चिढ़ थी'। ऐसा होता होगा? उसकी चिढ़ घुस गई। उस चिढ़ को निकाले बगैर सहज नहीं हो सकते और राग को भी निकाले बगैर सहज नहीं हो सकते।

'देखने वाले' को नहीं है, खराब या अच्छा

यदि देह दातुन कर रहा हो और उसे वह देखे, आत्मा जाने, तो दोनों सहज कहलाएँगे। दातुन करना, वह गैरकानूनी नहीं है। अगर गैरकानूनी होता तो लोग आपत्ति उठाते न? लेकिन उससे अलग रहता है। उसे ऐसा नहीं लगता कि यह मैं कर रहा हूँ।

प्रश्नकर्ता : देह कर रहा है, मैं नहीं कर रहा।

दादाश्री : देह कर रहा है। खराब या गलत नहीं है वहाँ पर सहज है। देखने वाले के लिए खराब या गलत नहीं होता, करने वाले के लिए होता है। जब तक बुद्धि है तब तक खराब है। यदि देखने वाला बना तो ज्ञानी बन गया, उसे खराब-गलत होता ही नहीं इसलिए ये कषाय चले जाते हैं।

'चंदू' उदय में, 'खुद' जानपने में

प्रश्नकर्ता : बाहर के उदय हो उसमें खुद का अहंकार एकाकार हो जाता है इसलिए उसे एक्सेप्ट कर लेता है तो ऐसा नहीं होना चाहिए न? उसे अलग ही रहना चाहिए न? जब बाहर के उदय में वह एकाकार हो जाए तब?

दादाश्री : एकाकार हो जाए उसमें हमें क्या? एकाकार होना तो उसका स्वभाव है।

प्रश्नकर्ता : यदि अहम् है तो संयोगो में एकाकार होगा ही।

दादाश्री : हाँ, बस। वह तो होगा लेकिन तब उसे देखना है, अगर उसे नहीं देखेंगे तो मार पड़ेगी। ऐसा करते-करते-करते फिर उसके बाद अलग हो जाएगा। उसके बाद आपका जैसा यह ज्ञान है, वैसा ही, उस तरफ का रहेगा, यदि देखने का अभ्यास होगा तो। वर्ना, समय लगेगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, अब देर नहीं करनी है।

दादाश्री : ऐसा नहीं है, वह तो, नियम तो है ही न। अगर देखने का अभ्यास रहेगा तो 'वह' (पहले का अभ्यास) नरम होता जाएगा।

जो उदय स्वरूप है, उसमें दखल मत करना। अपना ज्ञान ऐसा कहता है कि उस उदय को जानो, यानी कि जो उदय है चंदूभाई उसी में तन्मयाकार रहेंगे, 'आपको' जानना है। उसका जो भी उदय हो, उसे आगे-पीछे करने की ज़रूरत नहीं है। उदय किसका आएगा? जिसका *पूरण* (चार्ज होना) किया है, उसका *गलन* ((डिस्चार्ज होना)) होता रहेगा। नया *पूरण* नहीं होगा। इसलिए पुराना, जिसका *पूरण* किया हुआ है, उसका *गलन* होता रहेगा। जो भी उसके उदय में आए, उस उदय में रहो। चंदूभाई उदय में रहेंगे और 'आपको' उन्हें देखते रहना है बस इतना ही काम है। अगर 'आप' उसे देखते रहोगे तो आत्मा सहज हो जाएगा। अगर चंदूभाई उदय में रहेंगे तो देह सहज हो जाएगा, *पुद्गल* सहज हो गया कहलाएगा।

अब जब तक प्रकृति है तब तक उसके पूरे नुकसान की भरपाई हो ही जाएगी यदि दखल नहीं करो तो। यदि दखल नहीं करेंगे तो प्रकृति नुकसान की भरपाई कर देगी। प्रकृति खुद के नुकसान की भरपाई खुद ही करती है। अब इसमें 'मैं कर रहा हूँ' कहने से बखेड़ा हो जाता है।

पुरुषार्थ, तप सहित

प्रश्नकर्ता : आपने 'वह' पुरुषार्थ की बहुत सुंदर बात बताई

कि व्यवस्थित के उदय के हिसाब से भीतर तन्मयाकार हो जाए लेकिन उस समय खुद उसमें एकाकार न हो और उस समय वह पुरुषार्थ में रहे, उसे एकाकार नहीं होने दे।

दादाश्री : जो पुरुषार्थ में रहेगा, उसे कोई परेशानी नहीं होगी। वही पुरुषार्थ कहलाता है न! प्रकृति तो हमेशा उदय में तन्मयाकार हो ही जाएगी उसी से उसे शांति मिलेगी और पुरुषार्थ एकाकार नहीं होने देता, जिससे 'उस' प्रकृति को अकुलाहट होती है, इसलिए जलन होती है।

प्रश्नकर्ता : क्या ज्ञान से ऐसा हो सकता है, कि जब 'वह' संपूर्ण रूप से अलग हो जाए, बिल्कुल भी एकाकार नहीं होता हो, तो फिर 'वे' दु:ख (और) जलन बंद हो जाएँगे?

दादाश्री : हाँ, हो ही जाएँगे न। बिल्कुल भी जलन नहीं रहेगी न! जब तक भीतर कचरा है तभी तक जलन है। जलन मिटने के बाद में यथार्थ साहजिकता उत्पन्न हो जाएगी। जलन वाले में ही साहजिकता नहीं रहती, उसमें आनंद-खुशी नहीं रहती।

जान लिया तो पहुँच ही पाएगा

प्रश्नकर्ता : हमसे तो प्रकृति में दखलंदाज़ी हो जाती है, तो हमारी प्रकृति सहज कब होगी?

दादाश्री : अभी भी जितनी दखल हो जाती है, उतनी ही असहजता बंद करनी पड़ेगी। इसे भी आप जानते हो। जब असहज हो जाते हो, उसे भी जानते हो। असहजता बंद करनी है, वह भी जानते हो। किस तरह से बंद होगी, वह भी जानते हो। आप सबकुछ जानते हो।

प्रश्नकर्ता : उसके बावजूद भी नहीं कर सकते।

दादाश्री : वह धीरे-धीरे होगा, एकदम से नहीं हो पाएगा। यह दाढ़ी बनाने का सेफ्टी रेज़र आता है न, इस तरह से ऐसा किया और

हो गया? थोड़ा समय लगता है। हर एक को थोड़ा टाइम लगता है। सेफ्टी के लिए, ऐसा करे तो हो जाएगा?

प्रश्नकर्ता : कट जाएगा।

दादाश्री : हर एक को टाइम लगता है।

डीकंट्रोल्ड प्रकृति के सामने...

प्रश्नकर्ता : अगर कंट्रोल बगैर की प्रकृति हो तो?

दादाश्री : लेकिन वह तो, कंट्रोल बगैर की प्रकृति अपने आप ही उसे फल दे देती है, सीधे ही। हमें, उसे सिखाने नहीं जाना पड़ता। अर्थात् अगर कंट्रोल वाली प्रकृति हो तो 'उसे' सुख ही लगता है और कंट्रोल बगैर की हो तो अपने आप ही, उसका फल वहीं के वहीं मिल जाता है। पुलिस वाले के साथ कंट्रोल बगैर की प्रकृति करके देखना, वहीं के वहीं फल मिल जाएगा। जहाँ देखो वहाँ, घर में भी, सभी जगह। अर्थात् जिसकी बगैर कंट्रोल की प्रकृति होती है, उसे वहीं के वहीं अपने आप फल मिल जाता है, भीतर ही फल मिल जाता है। मिले बगैर रहता ही नहीं है। जो बगैर कंट्रोल के भागदौड़ करते रहते हैं, अंत में ठोकर खाकर ठिकाने पर आ जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : यदि कंट्रोल हो तो अच्छा है या नहीं?

दादाश्री : कंट्रोल हो तो उत्तम कहलाता है। बगैर कंट्रोल के तो उसे खुद को मार पड़ती ही है। कंट्रोल हो उसके जैसा उत्तम कुछ भी नहीं है और ज्ञान से प्रकृति कंट्रोल में रह सकती है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान से कंट्रोल रहना अर्थात् सहज रूप से, ऐसा?

दादाश्री : सहज शब्द ही नहीं होता न! पुरुषार्थ से रह सकता है। अगर सहज रूप से रहता हो, तो फिर उसे आगे कुछ करना बाकी ही नहीं रहता न! खत्म हो गया, काम पूर्ण हो गया।

प्रकृति, प्रकृति के भाव में रहती ही है। आपको कंट्रोल करने

की ज़रूरत नहीं है। अगर 'आप' सहज भाव में आ गए तो प्रकृति तो सहज भाव में ही है।

प्रकृति का सहज भाव अर्थात् 'जैसा है वैसा' बाहर दिखाई देना, वह।

प्रकृति विलय होगी 'सामायिक' में

आप शुद्धात्मा हो गए तो प्रकृति साहजिक हो गई। साहजिक तो दखलंदाज़ी करने दे ऐसी नहीं होती और साहजिक हो गई अर्थात् वह व्यवस्थित है। इसलिए हम आपको ऐसा नहीं कहते, कि 'तुझे खराब विचार आया तो तू ज़हर पी ले।' अब यदि खराब विचार आया तो खराब को जानना और अच्छा विचार आया तो अच्छे को जानना। लेकिन अब, यह सब किस तरह से विलय होगा? कितना कुछ तो कंट्रोल में नहीं आ सकता, आप कह रहे हैं न कि वह ऐसी चीज़ है जो विलय नहीं होती। उसके लिए हमें उपाय करना पड़ता है। कुछ घंटे बैठकर ज्ञाता-ज्ञेय के संबंध से वह विलय हो जाएगी। जिस प्रकृति को विलय करना हो वह इस तरह से विलय होगी इसलिए एक घंटा बैठकर खुद ज्ञाता बनकर उन चीज़ों को ज्ञेय रूप से देखो तो वह प्रकृति धीरे-धीरे विलय होती जाएगी। अर्थात् यह सारी प्रकृति यहाँ पर खत्म हो सके ऐसी है।

बिफरी हुई प्रकृति सहज होने से...

प्रश्नकर्ता : दादा आपने ऐसा कहा कि जब बिफरी हुई प्रकृति सहज हो जाए तब शक्ति बढ़ने लगती है?

दादाश्री : हाँ, शक्ति बहुत बढ़ती है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा किस तरह से होता है?

दादाश्री : अगर बिफरी हुई प्रकृति सहज हो जाए न, तो एकदम से शक्ति उत्पन्न होती है, सभी शक्तियों को बाहर से खूब खींचती है। जैसे कि हॉट (गर्म) लोहा होता है न, उस हॉट लोहे के गोले

पर यदि पानी डाले तो क्या होता है? पूरा पी जाता है, एक बूंद भी नीचे नहीं गिरने देता। उसी तरह से जो प्रकृति ऐसी बिफरी हुई रहती है न, वह हॉट गोले जैसी हो जाती है। फिर जैसे-जैसे वह ठंडी होती जाती है, वैसे-वैसे उसमें शक्ति बढ़ती जाती है।

सहज जीवन कैसा होता है?

अब सहज रूप से जीवन जी पाते हो क्या? कोई गाली दे, उस समय सहज रह पाते हैं?

प्रश्नकर्ता : मानसिक गुस्सा रहता है, बाहर नहीं आता।

दादाश्री : वह सहज जीवन ही नहीं कहलाता। सहज जीवन में तो यदि गाली दे तब भी सहज रहता है। यदि कोई जेब काट ले तो भी सहज रहता है। सहज जीवन अर्थात् भगवान बनना हो तब सहज जीवन होता है।

जहाँ संपूर्ण सहज, वहाँ बने भगवान

प्रश्नकर्ता : यदि प्रकृति संपूर्ण रूप से सहज हो जाए, तो क्या बाहर का भाग भी भगवान जैसा दिखाई देता है?

दादाश्री : हाँ, वैसी क्षमा ही दिखाई देती है, वैसी नम्रता दिखाई देती है, वैसी सरलता दिखाई देती है, और वैसा संतोष दिखाई देता है। किसी भी चीज़ का इफेक्ट ही नहीं। *पोतापणुं* नहीं रहता। वह सबकुछ लोगों को दिखाई देता है। बहुत सारे गुण उत्पन्न हो जाते हैं। वे न तो आत्मा के गुण हैं और न ही इस *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) के, ऐसे गुण उत्पन्न हो जाते हैं।

क्षमा तो आत्मा का भी गुण नहीं है और *पुद्गल* का भी गुण नहीं है। 'वह' गुस्सा करता है, उसे हम क्षमा नहीं करते लेकिन यों सहज क्षमा ही रहती है। लेकिन सामने वाले को ऐसा लगता है कि 'इन्होंने क्षमा कर दिया।' अर्थात् यहाँ पर पृथक्करण हो जाने से हमें समझ में आता है कि मुझे इसमें लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह क्षमा के लिए हुआ, इसी प्रकार सरलता के लिए कैसा होता है?

दादाश्री : हाँ, सरलता तो होती ही है न! सामने वाले की दशा उल्टी (विपरीत) हो, तब भी सरल को वह सीधा ही दिखाई देता है। कैसी सरलता है! नम्रता! इसमें आत्मा का कुछ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् खुद के क्रोध-मान-माया-लोभ चले गए हैं, इसलिए ऐसे गुण प्रकट होते हैं?

दादाश्री : लोभ के बजाय संतोष होता है, इसलिए लोग कहते हैं, 'देखो न, इन्हें कुछ चाहिए ही नहीं। जो भी हो, वह चलेगा।' जब ऐसे गुण उत्पन्न होते हैं, तब भगवान कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : जब लोगों को सरलता, क्षमा दिखाई देती है तब वे खुद किसमें रहते हैं?

दादाश्री : खुद मूल स्वरूप में रहते हैं, लोग ऐसा कहते हैं, *पुद्गल* ऐसा दिखाई देता है इसलिए। *पुद्गल* का वर्तन ऐसा दिखाई देता है इसलिए लोग कहते हैं, ओहोहो! कितनी क्षमा रखते हैं! इन्हें देखो न, हमने इन्हें गाली दी लेकिन इनके चेहरे पर कुछ भी असर नहीं हुआ। कितनी क्षमा रखते हैं! फिर वापस यह कथन भी कहते हैं, 'क्षमा वीरस्य भूषणम्।' अरे नहीं है, वीर भी नहीं है, क्षमा भी नहीं है, ये तो 'भगवान हैं'। वापस कहते हैं, क्षमा, वह मोक्ष का दरवाज़ा है। अरे भाई, यह क्षमा नहीं है, यह तो सहज क्षमा है। जिस तरह से क्षमा सुधारती है वैसा कोई नहीं सुधार सकता। लोग जिस प्रकार क्षमा से सुधरतें हैं, वैसे किसी अन्य चीज़ से नहीं सुधर सकते। मारने से भी नहीं सुधर सकते इसलिए 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' कहलाती है।

❖❖❖❖❖

[4]

आज्ञा का पुरुषार्थ बनाता है सहज

अब आज्ञा का पालन सहज बनने के लिए

प्रश्नकर्ता : मन-वचन-काया की सहजता और आत्मा की सहजता के बारे में थोड़ा समझाइए न।

दादाश्री : आत्मा सहज ही है। ज्ञान मिलने के बाद जो शुद्धात्मा *लक्ष* (जागृति) में आता है न, वह अपने आप ही *लक्ष* में आता है। हमें याद नहीं करना पड़ता। जिसे याद करते हैं, उस चीज़ को भूल जाते हैं। यह निरंतर *लक्ष* में रहता है। इसे कहेंगे कि आत्मा सहज हो गया। अब मन-वचन-काया को सहज करने के लिए जैसे-जैसे ज्ञानीपुरुष की आज्ञा का पालन करते जाएँगे वैसे-वैसे मन-वचन-काया सहज होते जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : इसमें आप ऐसा कह रहे हैं कि 'सहज भाव से *निकाल* करना है', तो सहज भाव लाने का तरीका क्या है?

दादाश्री : सहज भाव अर्थात् क्या? ज्ञान मिलने के बाद आप शुद्धात्मा बन गए इसलिए आप सहज भाव में ही हो। क्योंकि जब अहंकार नहीं होता, तब सहज भाव ही रहता है। अहंकार की एबसेन्स (अनुपस्थिति), वही सहज भाव।

यह ज्ञान लिया है अर्थात् आपका अहंकार एबसेन्ट है। आप जो ऐसा मानते थे, 'मैं चदूंभाई हूँ' अब वैसा नहीं मानते हो न? तो हो गया!

'मैंने वकालत की और मैंने उसे छुड़वाया, मैंने उसे ऐसा किया!'

'मैं संडास जाकर आया', कहता है। 'ओहोहो! कल क्यों नहीं गए थे?' तब कहे 'कल तो डॉक्टर को बुलाना पड़ा था, अटक गया था अंदर।'

अहंकार की वजह से सक्रियता है। अहंकार की वजह से सबकुछ बिगड़ गया है। अगर, वह अहंकार चला जाए तो सब रेग्युलर हो जाएगा, उसके बाद साहजिक हो जाएगा। अहंकार सब बिगाड़ता है, खुद का ही बिगाड़ता है जबकि साहजिकता हो तो सब अच्छा रहता है।

हमने आपको जो आज्ञाएँ दी हैं न, वे सहज ही बनाती हैं। वह सहज ही बनाने वाली हैं। सब काम सहज रूप से पूर्ण हो जाए ऐसा है उसका, चाहे कैसी भी परेशानी हो। देखो न, यह कैसी परेशानी आई है! कैन्सर हुआ है और फलाना हुआ है और परेशान होते रहते हैं, नहीं? अरे! हुआ है तो उसे हुआ है, उसमें मुझे क्या हुआ है? हमने जाना कि पड़ोसी घबरा गए हैं। पड़ोसी के लिए कोई बहुत नहीं रोता, है न? अभी ये जो साथ वाले सेठ हैं, उन्हें यदि कुछ दुःख आ जाए तो क्या हम रोने लग जाएँगे? उनसे जाकर कहेंगे कि 'भाई, हम हैं न आपके साथ, आप घबराना मत'।

सहज दशा की लिमिट

प्रश्नकर्ता : सहजता की लिमिट कितनी?

दादाश्री : निरंतर सहजता ही रहती है। सहजता रहेगी लेकिन जितना आज्ञा पालन करोगे उतनी रहेगी। आज्ञा ही धर्म और आज्ञा ही तप है, इतनी ही मुख्य चीज़ है। हमने क्या कहा है कि अगर आज्ञा पालन करोगे तो हमेशा समाधि रहेगी। कोई गालियाँ दे या मारे, फिर भी समाधि नहीं जाएगी, ऐसी समाधि।

सुबह-सुबह निश्चय ही करना है कि दादा, आपकी आज्ञा में ही रह सकूँ ऐसी शक्ति दीजिए। ऐसा निश्चय करने के बाद धीरे-धीरे बढ़ता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने के बाद शुरुआत में जैसे-जैसे उस अनुसार करते जाते हैं और जैसे-जैसे अपना भाव पक्का होता जाता है, वैसे-वैसे और भी ज़्यादा आज्ञा में रह पाते हैं।

दादाश्री : और भी ज़्यादा रह पाते हैं। अपने ज्ञान में, अक्रम विज्ञान में, सामान्य रूप से चौदह साल का कोर्स है। उसमें जो बहुत कच्चे होते हैं न, उन्हें ज़्यादा समय लगता है और जो बहुत पक्के होते हैं, उन्हें ग्यारह साल में हो जाता है, जैसे निष्ठा बढ़े वैसे लेकिन चौदह साल में सहज हो जाता है। मन-वचन-काया भी सहज हो जाते हैं।

डखोडखल (दखलंदाज़ी) नहीं करूँ ऐसी शक्ति दीजिए', आप चरण विधि में रोज़ बोलते हैं न, तो लोगों को उसका अच्छा परिणाम मिलता है लेकिन यदि वह जानता ही न हो कि दखलंदाज़ी नहीं करनी है, तो उससे बार-बार दखलंदाज़ी हो जाती है और फिर पछतावा होता है। वह कैसा है? जैसे कि 'कल्याण हो' ऐसे भाव हमने किए हों तो उसका असर होता है और यदि ऐसा कुछ भी नहीं बोलें हो तो वैसा असर नहीं होगा। उससे उल्टे परिणाम आते हैं। ठीक से, अच्छे नहीं आते।

शुद्ध उपयोग से बनता है सहज

ये चंदूभाई अलग हैं और आप शुद्धात्मा अलग हो, ऐसी जागृति रहनी चाहिए। फिर अगर सामने वाला व्यक्ति उल्टा बोले, टेढ़ा बोले तब भी हमारे *लक्ष* में से यह नहीं जाना चाहिए कि वह शुद्धात्मा ही है। क्योंकि वह जो बोल रहा है, वह अपना उदय कर्म बोल रहा है। उस उदय कर्म का आमने-सामने लेन-देन है। यानी कि *पुद्गल* का लेन-देन है। इससे उसके शुद्धात्मा में कुछ बदलाव नहीं होता। यानी खुद को शुद्ध उपयोग रखना चाहिए और सामने वाले को भी शुद्ध देखें, उसे शुद्ध उपयोग रखा कहा जाएगा।

खुद ने एवरीव्हेर (सभी जगह) शुद्ध देखा, उसे शुद्ध उपयोग

और उसी को समत्व योग कहते हैं। समत्व योग को प्रत्यक्ष मोक्ष कहा गया है। हमें निरंतर समत्व योग रहता है। दखलंदाज़ी दिखाई दे तो भी समत्व योग रहता है। हाथ ऊँचा-नीचा करे फिर भी हर्ज नहीं है, वह टेढ़ा हो जाए तब भी हर्ज नहीं, नहीं करे तब भी हर्ज नहीं। लेकिन जो खुद बुद्धि लगाकर ऐसा कहे कि यह मुझ से नहीं होगा तो वहाँ पर अहंकार है। सहज बनना है।

शुद्धात्मा बनकर रहो व्यवहार में

अगर कोई व्यक्ति जेल में से छूटकर प्रधानमंत्री बन जाए तो प्रधानमंत्री बनने के बाद वह दिन-रात यह नहीं भूलता कि 'मैं प्रधानमंत्री हूँ', नहीं भूलता न? वह नहीं भूलता इसलिए वह काम में भी नहीं चूकता। कोई अगर प्रश्न पूछे न, तो वह ऐसा समझकर ही जवाब देता है कि 'मैं प्रधानमंत्री हूँ'। इसी प्रकार हम शुद्धात्मा बन गए हैं न, तो हमें भी, 'मैं शुद्धात्मा हूँ,' ऐसा समझकर ही जवाब देना है। जिस रूप बन चुके हैं, उस रूप का है यह। समझ जाओ। बाहर कर्म के उदय ज़ोर मारें तो वह अलग बात है। वे तो प्रधानमंत्री के भी ज़ोर मारेंगे। कर्म के उदय से कोई पत्थर मारता है, कोई गालियाँ देता है। वैसे सभी कर्म के उदय तो उनके भी हैं न, लेकिन जिस प्रकार वे प्रधानमंत्री के रूप से अपना फर्ज़ निभाते हैं, उसी प्रकार से हमें भी शुद्धात्मा का फर्ज़ निभाना पड़ेगा। इससे वह यह नहीं भूल जाता कि 'मैं चंदूभाई हूँ'। ऐसा भूलने से चलेगा क्या? सबकुछ *लक्ष* में ही रहता है न?

शुद्ध स्वरूप से देखने पर, प्रकृति होती है सहज

प्रश्नकर्ता : यदि सामने वाले के साथ एडजस्ट होना हो तो उसमें शुद्धात्मा ही देखना चाहिए न? अगर हम शुद्धात्मा के रूप से देखेंगे तभी एडजस्ट हो सकेंगे न?

दादाश्री : हाँ! और क्या? जो आज्ञा का पालन करते हैं, वे एडजस्ट हो ही जाते हैं। आज्ञा पालन करो और शुद्धात्मा देखो,

उसकी फाइल को भी देखो। रिलेटिव को और रियल को, दोनों को देखो।

प्रश्नकर्ता : खुद की प्रकृति को, सामने वाले की प्रकृति के साथ एडजस्ट करवाने के बजाय अब, यदि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और सामने वाले को 'शुद्धात्मा' रूप से देखूँ, तो प्रकृति अपने आप एडजस्ट हो जाएगी न?

दादाश्री : हो ही जाएगी। यदि मारेंगे तो प्रकृति उछलेगी, वर्ना यों ही सरल-सहज भाव में आ जाएगी। यह खुद असहज हुआ न, इसलिए वह प्रकृति कूदती रहती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिन्होंने ज्ञान लिया है, उनकी प्रकृति सहज रहती है, परंतु सामने वाले ने नहीं लिया हो, उनकी थोड़ी न, सहज रहती है?

दादाश्री : लेकिन जो ज्ञान वाला है, वह दूसरे की प्रकृति के साथ सहज रूप से काम कर सकता है, यदि मृत अहंकार बीच में दखल न करे तो।

प्रश्नकर्ता : दो व्यक्ति आमने-सामने हो, एक ने दादा का ज्ञान लिया है तो वह खुद की प्रकृति को सहज करता जाता है, इस तरह से ज्ञान में रहकर, पाँच आज्ञा का पालन करके, लेकिन सामने वाला वह व्यक्ति, जिसने दादा का ज्ञान नहीं लिया है, उसकी प्रकृति कैसे सहज होगी?

दादाश्री : नहीं, उससे कुछ लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अब उसकी प्रकृति तो सहज नहीं होगी लेकिन क्या हमें उससे कोई दिक्कत आएगी?

दादाश्री : अपनी तो, ये जो पाँच आज्ञाएँ हैं न, वे आपके लिए सभी तरह से सेफसाइड है। अगर आप उनमें रहोगे न, तो कोई भी आपको परेशान नहीं करेगा, बाघ-सिंह कोई भी। बाघ को जितने समय

तक आप शुद्धात्मा के रूप से देखोगे, उतने समय तक वह अपना पाशवी धर्म, पशु योनि का जो धर्म है, उसे भूल जाएगा। यदि वह अपना धर्म भूल गया तो फिर कुछ नहीं करेगा।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् सामने वाले में शुद्धात्मा देखने से उसमें कोई परिवर्तन आता है क्या?

दादाश्री : ऑफ कोर्स (पक्का) इसीलिए मैं कहता हूँ न कि घर के लोगों को 'शुद्धात्मा' रूप से देखो। कभी देखा ही नहीं न! आप घर में घुसते ही बड़े बेटे को देखते हो तो आपकी दृष्टि में ऐसा कुछ नहीं रहता है। बाहर की दृष्टि से तो, 'कैसे हो, कैसे नहीं', सबकुछ करते हैं लेकिन यदि भीतर में कहो कि, 'साला नालायक है', तो इस प्रकार से देखने पर उसका असर होगा और यदि 'शुद्धात्मा' देखागे तो उसका भी असर होगा।

यह संसार सारा असर वाला है। यह इतना ज़्यादा इफेक्टिव है न कि बात मत पूछो। जब हम विधि करते हैं न, तब हम ऐसा ही करते हैं, असर डालते हैं, विटामिन डालते हैं इसलिए ये शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। वर्ना, शक्ति कैसे मिलती? मैं अनंत जन्मों की कमाई लेकर आया हूँ और आप यों ही राह चलते आ गए।

प्रश्नकर्ता : आप ने कहा कि हम शुद्धात्मा को शुद्धात्मा के रूप में देखते हैं। भीतर में ये शुद्धात्मा तो निर्दोष ही हैं...

दादाश्री : वे तो भगवान ही हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमें उसकी प्रकृति भी निर्दोष दिखाई देती है।

दादाश्री : हाँ, वह प्रकृति निर्दोष दिखनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अंत में प्रकृति भी निर्दोष दिखाई दे, जब दोनों निर्दोष दिखाई देंगे तब सहजता आ जाएगी?

दादाश्री : हाँ, अपना यह मार्ग तो वहाँ तक का है, कहते हैं कि आप में कपट हो, उसे भी देखो। जबकि क्रमिक मार्ग में तो कपट

चलता ही नहीं न! अहंकार को ही बिल्कुल शुद्ध करते रहना पड़ता है, वहाँ नहीं चलता।

अर्थात् इस तरह से करते-करते यदि दो-तीन जन्मों में भी पूरा हो जाए तब भी बहुत हो गया न! अरे! यदि दस जन्मों में हो तब भी क्या नुकसान हो जाएगा? लेकिन कोई दोषित नहीं है।

यदि 'व्यवस्थित' को समझे, तो बन जाएगा सहज

'ज्ञान' से पहले, यदि आप स्टेशन गए हो और वहाँ आपको पता चले कि गाड़ी पाव घंटा लेट है तो आप तब तक इंतज़ार करते हैं। उसके बाद फिर पता चले कि अभी और आधा घंटा लेट है तो आप और आधा घंटा बैठते हैं। उसके बाद यदि फिर से पता चले कि अभी और आधा घंटा लेट है तो आप पर क्या असर होगा?

प्रश्नकर्ता : बोरियत हो जाती और इन रेलवे वालों को गालियाँ भी दे देता।

दादाश्री : ज्ञान क्या कहता है कि यदि गाड़ी लेट है तो वह 'व्यवस्थित' है। 'अवस्था मात्र कुदरती रचना है, जिसका कोई बाप भी रचने वाला नहीं है और वह व्यवस्थित है।' इतना हमने बोला, तो ज्ञान के इन शब्दों के आधार पर सहज रह पाएँ। प्रकृति अनादिकाल से असहज बनाती आई है। ज्ञान के आधार पर उसे सहज करनी है। वास्तव में तो यह प्रकृति सहज ही है लेकिन खुद के विभाविक भाव की वजह से असहज हो जाती है। ज्ञान के आधार पर उसे सहज स्वभाव में लाना है। यदि रिलेटिव में दखल करना बंद हो गया तो आत्मा सहज हो जाता है। इसका मतलब क्या कि खुद ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद के पद में रहता है।

यह ज्ञान हाज़िर रहे तो अगर ट्रेन आधा-आधा घंटा करके पूरी रात भी बिता दें न, तो भी हमें क्या हर्ज है? जबकि अज्ञानी तो आधे घंटे में कितनी ही गालियाँ दे देगा! वे गालियाँ क्या ट्रेन को पहुँचेंगी? गार्ड को पहुँचेंगी? नहीं, कीचड़ तो वह अपने आप पर ही उड़ाता

है। अगर ज्ञान हो तो परेशानी में परेशानी को देखता है और सुख-सुविधा में सुख-सुविधा को देखता है, उसी को सहज आत्मा कहते हैं। हमारा यह ज्ञान ऐसा है कि बिल्कुल भी बोरियत नहीं होती। फाँसी पर चढ़ना पड़े तब भी परेशानी नहीं होती। फाँसी पर चढ़ना तो 'व्यवस्थित' है और रोकर भी फाँसी पर तो चढ़ना ही है, तो फिर हँसकर क्यों नहीं?

प्रश्नकर्ता : अगर व्यवस्थित को निर्धारित समझे, तो फिर कुछ करने का रहा ही नहीं न?

दादाश्री : यदि ज्ञान का दुरुपयोग करेंगे तो वे दखल किए बगैर रहेंगे ही नहीं! इसलिए दखलंदाज़ी नहीं करनी है। सहज भाव से रहना है! हम रहते हैं न सहज भाव से! 'मैं' 'पटेल' को कहता हूँ कि रोज़ चार बजे सत्संग में जाना है, वर्ना, फिर रह ही जाएगा न! इस तरह से 'निर्धारित' कहने से तो खत्म हो जाएगा। निर्धारित नहीं कह सकते। है निर्धारित, लेकिन वह ज्ञानी की दृष्टि से निर्धारित है और यह बात ज्ञानी आपको अवलंबन के रूप में देते हैं। यह एक्ज़ेक्ट अवलंबन है लेकिन इसका उपयोग हमारी बताई हुई समझ के अनुसार करना। आपकी समझ के अनुसार इसका उपयोग मत करना।

जब तक आपको केवल दर्शन नहीं हुआ तब तक हम कहते हैं कि भाई, बैंक में से बाहर आओ तो जेब संभालकर रखना। जहाँ 'बिवेयर ऑफ थीव्स' लिखा हो, वहाँ पर जेब संभालकर रखना है और उसके बावजूद भी अगर वे आँख में मिर्च डालकर जेब काट लें तो हमें कहना है कि 'व्यवस्थित' है। अपना प्रयत्न था। बहुत समझने जैसा है। व्यवस्थित तो बहुत ऊँची चीज़ है!

जहाँ दखल चली गई वहाँ प्रकृति सहज

जिसे यह 'ज्ञान' मिला है, उसे भी गाड़ी में चढ़ते समय ऐसा विचार आता है कि कहाँ जगह है और कहाँ नहीं। वहाँ सहज नहीं रह पाता। भीतर खुद दखल करेगा, फिर भी अगर 'ज्ञान' में ही रहो,

'आज्ञा' में ही रहो तो प्रकृति सहज हो जाएगी। फिर चाहे जैसा भी हो तब भी, भले ही वह लोगों को सौ गालियाँ दे फिर भी वह प्रकृति सहज ही है। क्योंकि हमारी आज्ञा में रहा इसलिए उसकी खुद की दखल खत्म हो गई, और तभी से प्रकृति सहज होने लगती है।

क्रमिक मार्ग में ठेठ तक सहज दशा नहीं होती। वहाँ 'यह त्याग करो, यह त्याग करो, ऐसा कर सकते हैं, ऐसा नहीं कर सकते हैं।' ठेठ तक ऐसी झंझट रहेगी ही।

साहजिक दशा का थर्मामीटर

प्रश्नकर्ता : सहजता लाने के लिए इस फाइल नंबर एक का भी समभाव से *निकाल* (निपटारा) करना पड़ेगा?

दादाश्री : इस एक नंबर की फाइल के साथ कुछ झंझट नहीं है न? किसी भी प्रकार की नहीं है? ओहोहो! और एक नंबर की फाइल का गुनाह नहीं किया है?

मैं अपने महात्माओं से पूछता हूँ कि 'पहले नंबर की फाइल का समभाव से *निकाल* करते हो न?' तब वे कहते हैं, 'पहले नंबर की फाइल का क्या *निकाल* करना है?' अरे, असली फाइल तो पहले नंबर की ही है। हम जो दुःखी है न, हमें यहाँ पर जो दुःख लगता है न, वह असहजता का दुःख है। मुझसे किसी ने पूछा था कि 'यह फाइल नंबर वन, उसे अगर फाइल न माने तो क्या हर्ज है? वह किस काम का? यह इसमें कुछ खास हेल्पिंग नहीं है।' तब मैंने ऐसा जवाब दिया कि 'इस फाइल के साथ तो बहुत ज़्यादा माथापच्ची की है इस जीव ने, इसे असहज बना दिया है।' तब कहते हैं, 'इन दूसरी फाइलों को हमने कुछ नुकसान पहुँचाया हो, वह तो समझ में आता है लेकिन अपनी फाइल को, पहले नंबर की फाइल को क्या नुकसान पहुँचाया, वह समझ में नहीं आता।' ये सब नुकसान किए हों, जब इसे अच्छी तरह से समझाएँगे तब समझ में आएगा, भाई।

इन सभी फाइलों का 'समभाव से *निकाल*' करते हैं। फिर, दो

नंबर की फाइल के साथ तो झगड़े हुए हैं, झंझटें हुई हैं तो इसका समभाव से *निकाल* (निपटारा) करते हैं लेकिन यह फाइल नंबर एक, अपनी ही फाइल है। इसका कैसे *निकाल* करना है?' लेकिन लोगों को यह पता नहीं चलता कि क्या *निकाल* करना है! इसके तो बेहिसाब *निकाल* करने हैं। तब मैंने उन्हें समझाया। तब वे कहते हैं, 'यह बात भी बहुत सोचने लायक हो गई, यह तो।'

बाहर प्रधानमंत्री और उन सभी के भाषण चल रहे हो, उस समय यदि थूकना हो न, तो वे थूकते नहीं। सभा में बैठे हो न, पेशाब करने जाना हो तो डेढ़-दो घंटे तक नहीं जाते। ऐसा होता है या नहीं? संडास जाना हो तब भी एक घंटे के बाद। वर्ना, सभा में से उठेगा तो इज़्ज़त चली जाएगी न? यदि संडास जाना हो तो घंटे भर रोककर रखता है क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, तब भी रोककर रखता है। जब नहीं रोक पाता तब जाता है।

दादाश्री : लेकिन यह सब जो किया है न, उससे देह का जो सहज स्वभाव था, वह सहज स्वभाव टूट गया। इसे सहज रहने ही नहीं दिया। अर्थात् कई जगह पर ऐसा किया है। यानी कि पहले नंबर की फाइल को बहुत नुकसान पहुँचाया है।

इस देह को सहज नहीं रहने दिया, इसलिए अब, आपकी पहले नंबर की फाइल का समभाव से *निकाल* करना है। सभी वृत्तियों को दबाकर रखने से असहज हो गया है। थकने पर भी चलता रहता है।

किसी होटल में खाने बैठा हो और पहले नंबर की फाइल का पेट भर गया हो और वह खाना स्वादिष्ट हो तो खाता ही रहता है, वह नुकसान करता है। पहले नंबर की फाइल को तो लोग बहुत परेशान करते हैं।

अगर कोई अच्छी पुस्तक हो तो पढ़ते ही रहता है, सोने का टाइम हो गया हो तब भी। उसे थोड़ा इन्टरेस्ट आ जाता है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यह पहले नंबर की फाइल ऐसी है, वह कल्पना में भी कहाँ से आता है?

दादाश्री : हाँ, 'मैं ही हूँ' सबकुछ।

प्रश्नकर्ता : हाँ। वह तो आपके पास आए और आपने कुछ ऐसा जादूमंतर किया तब जाकर पता चला कि अब, यह हमारी फाइल है। वर्ना, हम भी ऐसे ही थे।

दादाश्री : 'मैं ही हूँ' तब तू पीछे क्यों पड़ता है? तब कहे 'अभी मेरी परीक्षा चल रही है। अरे, 'तू है' तो कर न, पढ़ न? तब कहे, 'नहीं, नींद आ जाती है।' तब तो वह तू नहीं है? तब उसे भेद समझ में नहीं आता।

यदि नाटक देखने जाना हो और फाइल नं-1 को सोना हो तो सोने नहीं देता और नाटक देखने जाता है। तीन बजे तक नाटक देखता है और नाटक में ऐसे एकाध झपकी भी आ जाती है। उतने में कोई कहेगा, 'भाई, नाटक देखो न, ऐसा क्यों कर रहे हो?' वापस जागता है। फिर भी नहीं हो तो आखों में कुछ लगाकर बैठता है। लेकिन इससे किसी भी तरह से, मार-पीटकर काम ले लिया। इस फाइल की नींद में भी अब्स्ट्रक्शन (रुकावट) डाला। किसलिए? नाटक देखने के लिए, वह नींद में अब्स्ट्रक्शन करता है।

जहाँ समभाव से निकाल, वहाँ सहज

यह अनियमित हो गया है। अनियमित है इसलिए असहज होता है। असहज रहता है इसलिए आत्मा को असहज करता है। जिसकी देह सहज, उसका आत्मा सहज। इसलिए पहले फाइल नंबर वन को ही सहज करनी है। जागरण करता है या नहीं? पुण्यशाली हो, आपके हिसाब में नाटक वगैरह नहीं है। हमारे हिसाब में तो बहुत नाटक थे। पहले नंबर की फाइल की है कोई गलती? पहले नंबर की फाइल को देखने जैसा है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : पहले नंबर की फाइल को ही देखने जैसा है, दादा।

दादाश्री : लोग यहाँ से गाड़ी में मुंबई जाते हैं, तो नींद में अब्स्ट्रक्शन करते हैं या नहीं? नींद में भी, जब वह गाड़ी में बैठता है मुंबई जाने के लिए, तब सारी रात जागता है। शरीर तो ऐसे-ऐसे हिलता रहता है। कोई साथ में हो न, उसके ऊपर गिर जाता है! तब अपने को ऐसा लगता है कि 'ये इतने बड़े आदमी होकर, कॉन्ट्रैक्टर होकर, मेरे ऊपर गिरते हैं!' ऊपर से अपने कोट को भी तेल वाला करता है। अब उनसे क्या कहें? हम कह भी क्या सकते हैं? क्योंकि उनका कोई गुनाह नहीं है। हम बैठे इसलिए हमारा गुनाह है, उनका क्या गुनाह? वे तो सहज रूप से सोते हैं बेचारे! लेकिन देह को सहज नहीं रहने दिया और असहज हो गया, उसका यह सब हिसाब है। भगवान क्या कहते हैं, 'देह को सहज करो।' जबकि इन्होंने असहज किया।

यदि गाड़ी में थक गए हो तो भी नीचे नहीं बैठते। पहले नंबर की फाइल क्या कहती है, 'बहुत थक गया हूँ' फिर भी ये इज़्ज़तदार लोग नीचे नहीं बैठते। ऐसा होता है या नहीं? मैं कहता हूँ कि 'अब बैठो न, बैठो।' 'ये लोग देखेंगे न!' लेकिन इनमें से आपको कौन पहचानता है और यदि पहचानते भी हो तो भी क्या? क्या इनमें से कोई इज़्ज़तदार है? गाड़ी में तुझे कोई इज़्ज़तदार दिखाई दिया? अगर कोई इज़्ज़तदार होगा तो अपनी इज़्ज़त जाएगी। मैंने तो बहुत इज़्ज़तदार लोग देखें हैं। इसलिए मुझे तो समझ में आ गया न, जब मैं थर्ड क्लास के डिब्बे में सफर करता था, तब बैग को नीचे रखकर उस पर बैठ जाता था, यदि बैग खराब होगा तो हर्ज नहीं।

अर्थात् मेरा कहना है कि इस देह को असहज करते हैं और फिर कहते हैं कि मुझे भूख नहीं लगती। जब भूख लगी हो उस समय 'होता है कि जल्दी क्या है? अभी बातचीत चलने दो।' इस तरह से डेढ़ घंटा निकल जाता है हर रोज़ ऐसा ही करता है न। फिर कहता है, 'अब मेरी भूख बिल्कुल मर गई है।' अरे भाई, वह किस तरह

से जीवित रहेगी? तूने प्रयोग ही ऐसे किए हैं न! अरे, भूख लगने के दो घंटे बाद खाता है, उस समय वह ताश खेलने बैठा होता है, कितने लोग तो मौज-शौक में रह जाते हैं न, 'होगा, होगा'। फिर दो घंटे के बाद भूख मर जाने बाद खाते हैं। इस तरह से सब असहज हो गया है।

अरे, मैंने तो एक आदमी को देखा था, आज से तीस साल पहले। उसने स्टेशन पर चाय मँगवाई और चाय वाले ने कप उसके हाथ में दिया। तब गाड़ी चलने लगी, अब उसके मन में ऐसा आया कि चाय के पैसे बेकार चले जाएँगे, उसने चाय मुँह में डाल दी और जल गया, यह तो मैंने खुद देखा था। हाँ, चाय का पूरा कप ही अंदर डाल दिया। पहले रकाबी की पी ली और उसके बाद पौना कप चाय बची थी, इतने में गाड़ी चलने लगी तो वह दुकान वाला कहने लगा, 'अरे, पी लो, पी लो।' तो इसने पी ली। पी लेने के बाद तो इतनी जलन हुई, बेचारा बहुत परेशान हो गया! अपने लोग तो बहुत होशियार हैं, पैसे बेकार नहीं जाने देते न! एक भी पैसा बेकार नहीं जाने देते।

इसलिए जब समझाया, तो कहते हैं, 'ओहोहो! ऐसी तो बहुत सी चीजें की हैं'। तब मैंने कहा, 'आप आइए, मैं आपको संक्षेप में समझाता हूँ, इस पर से समझ जाओ न!' फाइल नं-1 का समभाव से *निकाल* (निपटारा) नहीं किया है। इसलिए इस फाइल को भी सहज करनी है, समभाव से *निकाल* करके।

चलना ध्येय के अनुसार, मन के अनुसार नहीं

प्रश्नकर्ता : ऐसा निश्चय किया हो कि दादा के साथ रहकर काम *निकाल* लेना है, पाँच आज्ञा में रहना है और उसके बावजूद इसमें कमज़ोर पड़ जाते हैं, तो उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : लो! क्या करना चाहिए यानी? यदि मन कहे कि 'ऐसा करो' और हम जानते हैं कि यह तो अपने ध्येय के विरुद्ध है, बल्कि इससे दादाजी की कृपा कम हो जाएगी। इसलिए मन से

कहेंगे, 'नहीं, ध्येय के अनुसार ऐसा करना है'। दादाजी की कृपा किस तरह मिलेगी, वह जानने के बाद हमें उस तरह अपना कार्य करना चाहिए।

अर्थात् मन के कहे अनुसार चलने से ही ये सभी झंझटें होती हैं। काफी समय से यह कह रहा हूँ इसे। यही समझाते रहता हूँ। इसलिए अब मन के कहे अनुसार नहीं चलना चाहिए। अपने ध्येय के अनुसार ही चलना चाहिए वर्ना, वह तो जिस गाँव जाना है, उसके बजाय किसी और गाँव ले जाएगा! ध्येय के अनुसार चलना, उसे ही पुरुषार्थ कहते हैं न! ऐसे तो, मन के कहे अनुसार तो ये अँग्रेज़-वँग्रेज़ सभी चल ही रहे हैं न! इन सभी फॉरेन वालों का मन कैसा होता है? सीधा होता है जबकि अपना मन दखल वाला होता है। कुछ न कुछ उल्टा होता है। इसलिए तो हमें अपने मन का स्वामी खुद बनना पड़ता है। अपना मन, अपने कहे अनुसार चले ऐसा होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : जब यह बात निकलती है तो पंद्रह-बीस दिनों तक उसी के अनुसार चलता है। वापस ऐसा कुछ हो जाता है न, तो वापस बदल जाता है।

दादाश्री : बदल जाता है लेकिन वह तो मन बदल जाता है, हम क्यों बदल जाएँ? हम तो वही के वही है न!

आज्ञा पालन में दखल किसकी?

प्रश्नकर्ता : आज्ञा पालन के लिए सहज क्यों नहीं हो जाता?

दादाश्री : वह तो खुद की कमज़ोरी है।

प्रश्नकर्ता : क्या कमज़ोरी है?

दादाश्री : कमज़ोरी, जागृति की, थोड़ा-बहुत उपयोग रखना पड़ता है न?

एक आदमी लेटे-लेटे विधि कर रहा था। वैसे तो बैठे-बैठे,

जागते हुए करने में पच्चीस मिनट लगते हैं, लेकिन लेटे-लेटे करने में उसे ढाई घंटे लग गए। क्यों?

प्रश्नकर्ता : बीच में झपकी आ जाती है।

दादाश्री : नहीं! आलस आ जाता है न, इसलिए फिर कहाँ तक बोला, वह वापस भूल जाता है। दोबारा फिर से बोलता है। अपना विज्ञान इतना अच्छा है। कुछ भी दखल हो, ऐसा नहीं है। थोड़ी-बहुत रहती है?

प्रश्नकर्ता : एट ए टाइम पाँच आज्ञा का पालन करना, इतना सरल नहीं है न! वह (आलस) मन को खींच लेता है!

दादाश्री : ऐसे रास्ते में चलते-चलते शुद्धात्मा देखते हुए जाए, उसमें कैसी कठिनाई? क्या कठिन है? यदि डॉक्टर ने कहा हो कि आज से आठ-दस दिनों तक सीधे हाथ से खाना मत खाना तो उसे याद रखना इतना ही काम है न? अतः थोड़ी-बहुत जागृति रखना, बस इतना ही काम है न? जागृति नहीं रहती इसलिए दूसरा हाथ उसमें चला जाता है। अनादि का उल्टा अभ्यास है।

यों पाँच वाक्य तो बहुत ज़बरदस्त वाक्य हैं। ये वाक्य, समझने के लिए तो बेसिक हैं, लेकिन बेसिक बहुत कठिन है। धीरे-धीरे समझ में आते जाएँगे। ऐसे दिखने में सरल लगते हैं, हैं भी सरल, लेकिन दूसरे बहुत अंतराय हैं न! मन में विचार चलते रहते हैं, भीतर उथल-पुथल चलती रहती है, अकुलाहट होती रहती है, तो वह किस तरह से रिलेटिव और रियल देखेगा?

पूर्व कर्म के धक्के...

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी जो पाँच आज्ञा हैं, उनका पालन करना थोड़ा मुश्किल है या नहीं?

दादाश्री : मुश्किल इसलिए है कि हमारे जो पिछले कर्म हैं, वे परेशान करते रहते हैं। पिछले कर्मों की वजह से आज खीर खाने

को मिली। अब खीर ज़्यादा खा ली, उसकी वजह से डोज़िंग हो गया इसलिए आज्ञा का पालन नहीं हो पाया। अब यह अक्रम है। क्रमिक मार्ग में तो क्या करते हैं कि खुद सभी कर्मों को खपाते-खपाते आगे बढ़ते हैं। खुद कर्म को खपाकर, अनुभव लेकर और भुगतकर फिर आगे बढ़ते हैं। जबकि यह कर्म को खपाए बगैर की बात है। इसलिए हम ऐसा कहते हैं कि 'भाई, इन आज्ञा में रहो और यदि नहीं रह पाए तो चार जन्म ज़्यादा लगेंगे, उसमें क्या नुकसान होने वाला है?

प्रश्नकर्ता : वे आज्ञा भी कितनी ही बार सहज रूप से रहती हैं?

दादाश्री : धीरे-धीरे सभी सहज होती जाती हैं। जिसे पालन करनी है, उसके लिए सहज हो जाती है। इसलिए फिर खुद का मन ही उस, साँचे में ढल जाता है। जिसे पालन करनी है और जिसका निश्चय है, उसके लिए कोई परेशानी है ही नहीं। यह तो सब से उच्च, सरल विज्ञान है और निरंतर समाधि रहती है। यदि गाली दे तो भी समाधि नहीं जाती, नुकसान हो तब भी समाधि नहीं जाती, घर को जलता हुआ देखे तो भी समाधि नहीं जाती।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञाशक्ति का इतना विकास होता है कि सभी आज्ञा उसमें समा जाती हैं?

दादाश्री : समा जाती हैं। प्रज्ञाशक्ति पकड़ ही लेती है। ये पाँच आज्ञा, ये जो पाँच फंडामेन्टल सेन्टेन्स हैं न, वे पूरे वर्ल्ड के सभी शास्त्रों का अर्क (निचोड़) है!

आज्ञा का फ्लाय व्हील

अगर आज्ञा का फ्लाय व्हील एक सौ इक्यासी तक पहुँच गया मतलब गाड़ी चलने लगी। एक सौ अस्सी तक पहुँचने के लिए हमें मेहनत करवानी है। एक सौ इक्यासी तक पहुँचने के बाद वह अपने खुद के बल से चलेगा। ये जो बड़े फ्लाय व्हील होते हैं न, उसे यहाँ

से यहाँ तक, यहाँ से आधे तक ऊँचा करने के बाद वह अपने आप, अपने खुद के बल से ही बचे हुए आधे हिस्से में घूमते हैं। ठीक उसी प्रकार से यह भी दूसरा आधा अपने आप ही घूमता है। हमें वहाँ तक ज़ोर लगाना है, बस। फिर तो वह अपने आप ही सहज हो जाएगा, पूरा व्हील घूमेगा।

डिग्री बढ़ने का अनुभव

प्रश्नकर्ता : यह नब्बे डिग्री तक पहुँचा या सौ डिग्री तक, उसका पता कैसे चलता है?

दादाश्री : वह तो, खुद को बोझ हल्का लगता है और खुद सहज होता जाता है। जैसे-जैसे सहज होता जाता है वैसे-वैसे सब ठीक होता जाता है। सहज होता जाता है, सहज। क्या बोझा कम नहीं लगता? बोझ कम लगता है और उसका सब काम हो जाता है।

आज्ञा रूपी पुरुषार्थ : स्वाभाविक पुरुषार्थ

पाँच आज्ञा का पालन करना, उसे पुरुषार्थ कहते हैं और पाँच आज्ञा पालन के परिणाम स्वरूप क्या होता है? ज्ञाता-दृष्टा पद में रह पाते हैं। यदि कोई हम से पूछे कि सही पुरुषार्थ किसे कहेंगे? तब हम कहेंगे, ज्ञाता-दृष्टा रहना, वह। ये पाँच आज्ञा, ज्ञाता-दृष्टा रहना ही सिखाती हैं न? जब रियल और रिलेटिव देख रहे हो तब वे जो आगे-पीछे के विचार आते हैं, उन्हें 'व्यवस्थित' कहकर बंद कर दो। अगर देखते समय आगे का विचार उसे परेशान कर रहा हो तब 'व्यवस्थित' कह दें तो वह बंद हो जाएगा। अत: अपना देखना वापस शुरू रहता है। उस समय कोई फाइल परेशान कर रही हो तो समभाव से *निकाल* करने के बाद भी अपना वह शुरू रहता है। इस तरह से आज्ञा ज्ञाता-दृष्टा के पद में रखती है।

हमारी आज्ञा में रहना, वह पुरुषार्थ है। पुरुष (आत्मा) बनने के बाद और क्या पुरुषार्थ है? और यदि आज्ञा का फल आ चुका

हो, तो खुद बगैर आज्ञा के सहज स्वभाव में रह सकता है। वह भी पुरुषार्थ कहलाता है, बहुत बड़ा पुरुषार्थ कहलाता है। यह आज्ञा से पुरुषार्थ है जबकि वह स्वाभाविक पुरुषार्थ है!

प्रश्नकर्ता : स्वाभाविक पुरुषार्थ में आ जाने के बाद, वह पुरुषार्थ करने की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : उसके बाद ज़रूरत नहीं है न। वह तो अपने आप छूट जाता है।

प्रश्नकर्ता : जब ज्ञानी मिलते हैं तब स्वाभाविक पुरुषार्थ उत्पन्न होता है न?

दादाश्री : हाँ, स्वाभाविक उत्पन्न होता है न! पहला आज्ञा रूपी पुरुषार्थ, उसमें से फिर स्वाभाविक पुरुषार्थ उत्पन्न होता है।

अपनी पाँच आज्ञा सहज होने के लिए दी हैं। इन आज्ञा से पुण्य बंधता है। उससे एक या दो जन्म होते हैं। यदि हमारी आज्ञा का पालन करेंगे तो निरंतर सहज समाधि रहेगी।

❖❖❖❖❖

[5]

त्रिकरण ऐसे होता है सहज

इफेक्ट में दखल नहीं, वही साहजिकता

प्रश्नकर्ता : आपके अनुसार साहजिक अर्थात् क्या?

दादाश्री : साहजिक अर्थात् मन-वचन-काया की जो क्रियाएँ हो रही हैं, उनमें दखल नहीं करना। यह संक्षेप में, एक ही वाक्य में बताया। इसमें कितना समझ में आया है? यदि समझ में नहीं आया हो तो आगे दूसरा वाक्य रखूँ? मन-वचन-काया की जो क्रियाएँ हो रही हैं, उनमें दखल करने से साहजिकता खत्म हो गई है। जब 'मैं चंदूभाई हूँ', वह भान चला जाता है तब सहज होता है।

साहजिक अर्थात् क्या? यह अंदर वाली मशीन जिस तरफ चलाए उसी तरफ चलते रहना, खुद की दखल नहीं। भीतर वाला जिस तरह से चलाए, उसी तरह से चलना।

देह, देह का धर्म निभाता है, हमें अपना धर्म निभाना है। सब अपना-अपना धर्म निभाते हैं, उसे ज्ञान कहते हैं और सभी के धर्मों को 'मैं निभाता हूँ' ऐसा कहे, उसे अज्ञान कहते हैं।

मन ऊपर-नीचे होता है, आगे-पीछे होता है, वह उसका स्वभाव ही है। वह अपना धर्म बजाता है। उन सब को हमने देखा और जाना तो उसे कोई फरियाद ही नहीं रही। देखा अर्थात् जो चार्ज हो चुका था, वह डिस्चार्ज हो गया।

आत्मा ज्ञाता-दृष्टा हो गया इसलिए सहजात्मा हो गया। किसी

में दखल नहीं करता, मन के धर्म में या अन्य किसी में और मन का, उन सभी का धर्म सहज हो जाता है, यदि देह सहज हो गई तो सब सहज हो गया।

आत्मा तो सहज ही है, स्वभाव से ही सहज है, देह को सहज करना अर्थात् उसके परिणाम में दखल नहीं करना। उसका जो इफेक्ट होता है, उसमें किसी भी प्रकार का दखल नहीं करना, उसे सहज कहते हैं। परिणाम के अनुसार ही चलते रहे।

सहज अर्थात् क्या? मन-वचन-काया चलते रहे, उनका निरीक्षण करते रहो।

अनुभव पूर्वक की सहजता

प्रश्नकर्ता : तो क्या मन-वचन-काया अपने मूल स्वभाव में आ जाते हैं?

दादाश्री : हाँ! स्वाभाविक। ये हमारे मन-वचन-काया सब स्वाभाविक है। स्वाभाविक जैसा है वैसा स्वाभाविक, उनमें दखल वगैरह नहीं करते। अगर आपको इस पर थोड़ा गुस्सा आ गया हो तो भी उसे स्वाभाविक कहा जाता है। मन-वचन-काया स्वाभाविक कहलाते हैं। अर्थात् भीतर वाला माल निकला, ऐसा कहते हैं। उसमें दखल नहीं करते, वह स्वाभाविक है।

साहजिक मन-वचन (वाणी) और काया के प्रत्येक कार्य सरल होते हैं। यदि अनुभव असहज हो तो वे कार्य नहीं होते। अनुभव के साथ साहजिकता होनी चाहिए तब कार्य होता है।

...बाद में मन-वाणी-वर्तन डिस्चार्ज

प्रश्नकर्ता : जैसे आत्मा की ज्ञानशक्ति और उसकी अवस्था बदलती है वैसे मन-वाणी-वर्तन भी बदलते हैं क्या?

दादाश्री : मन तो, जो है वही रूपक में आता है, जो फिल्म बनी है वही फिल्म दिखाई देती है। मन में नया कुछ नहीं करना पड़ता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब वह मन चलता रहता है, तब भीतर रोंग बिलीफ की कुछ गाँठें पड़ जाती हैं अगर वे छूट जाएँ तो मन बंद हो जाएगा?

दादाश्री : ऐसा कुछ नहीं है, मन तो चलता ही रहता है। मन तो अपने आप चलता है। फिल्म अपने आप चलती ही रहती है!

प्रश्नकर्ता : जैसे मन कुदरती रूप से चलता रहता है तो क्या वाणी बोलते समय भी ऐसा ही होता है?

दादाश्री : वाणी भी कुदरती रूप से ही निकलती रहती है।

प्रश्नकर्ता : और किसी भी प्रकार का व्यवहार (वर्तन)?

दादाश्री : व्यवहार भी कुदरती रूप से ही चलता रहता है।

जहाँ निर्तन्मयता वहाँ निरोगिता

शरीर-मन-वाणी की जितनी निरोगिता उतनी आत्मा की सहजता।

प्रश्नकर्ता : यह शरीर-मन-वाणी की निरोगिता अर्थात् किस तरह से निरोगिता?

दादाश्री : व्यवहार आत्मा के सहज होने के बाद जो वाणी निकलती है, वह निरोगी निकलती है। जिनकी वाणी निरोगी होती है उनका आत्मा सहज होता है। यह हम जो कुछ भी बोलते हैं न, वह सब निरोगी कहलाता है। अर्थात् भीतर आत्मा सहज ही रहता है और वह सहजात्म स्वरूप परम गुरु कहलाता है। ऐसे सहजात्म स्वरूप की भक्ति करना। दोनों अलग, खुद भीतर दखल नहीं करता। दखल की वजह से सहजता चली गई।

प्रश्नकर्ता : लेकिन निरोगी वाणी अर्थात् राग-द्वेष बगैर की वाणी, दादा?

दादाश्री : हाँ, बिल्कुल राग-द्वेष बगैर की।

प्रश्नकर्ता : तो मन को निरोगी कैसे बनाना है, दादा।

दादाश्री : मन तो खुद का नहीं है इसलिए मन तो अपने आप डिस्चार्ज होता रहता है। जब भीतर एकाकार हो जाता है तब रोग होता है। यदि एकाकार ही नहीं होगा तो रोगी कैसे होगा? भले ही कितना भी टेढ़ा हो या उल्टा हो, फिर भी भीतर टेढ़े या उल्टे की कीमत नहीं है। अच्छा-बुरा तो समाज के अधीन है। भगवान के यहाँ कुछ है ही नहीं। भगवान तो कहते हैं कि यह सब दृश्य है, अच्छा-बुरा करना ही नहीं। दृश्य को देखना है, ज्ञेय को तो ज्ञान से जानना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन लौकिक दृष्टि से, अच्छे-बुरे के विचार आ जाते हैं उसकी वजह से कभी किसी के प्रति द्वेष भी हो जाता है।

दादाश्री : नहीं, वह तो मन में होता है, उसे तो आप जानते हो न! वह जो भरा हुआ माल है, वह निकलता है। उसे आपको देखते रहना है। भीतर पूछकर नहीं भरा था। जो निकल गया, वह दोबारा नहीं आता और यदि अब थोड़ा-बहुत होगा तो आएगा लेकिन बाद में नहीं आता। जितना माल पाइप में भरा है उतना ही आएगा।

प्रिकॉशन लेना या नहीं?

प्रश्नकर्ता : सहज भाव से सोचें कि यदि बरसात हो जाए तो ऐसा करेंगे, ऐसा जो होता है, तो क्या वह विकल्प कहलाता है? सोच-विचार करने के बाद जो हुआ, वह ठीक है लेकिन सोच-विचार करना, क्या वह दखल कहलाता है या विकल्प कहलाता है?

दादाश्री : जिन्होंने 'ज्ञान' नहीं लिया है, उनके लिए तो सभी विकल्प ही कहलाते हैं। जिन्होंने 'ज्ञान' लिया है न, वे समझ जाते हैं। उन्हें फिर विकल्प नहीं रहते। शुद्धात्मा के रूप में 'हमें' जरा भी सोच-विचार नहीं करना पड़ता। जो अपने आप आते हैं, उन विचारों को जानना है।

प्रश्नकर्ता : इसका अर्थ ऐसा हुआ कि कोई 'प्रिकॉशन' ही नहीं लेना है?

दादाश्री : 'प्रिकॉशन' (सावधानी) होते होंगे? जो अपने आप हो जाए, उसे 'प्रिकॉशन' कहते हैं। अब इसमें 'प्रिकॉशन' लेने वाला कौन रहा?

दिन के उजाले में आप ठोकर खा जाते हो! उसमें 'प्रिकॉशन' लेने वाले आप कौन होते हो? क्या इंसान 'प्रिकॉशन' ले सकता है, जिसमें संडास जाने की भी स्वतंत्र शक्ति नहीं है, वहाँ?

सारा संसार 'प्रिकॉशन' लेता है, उसके बावजूद भी क्या 'एक्सिडेन्ट नहीं होते?' जहाँ 'प्रिकॉशन' नहीं लेते वहाँ क्या एक्सिडेन्ट नहीं होते! 'प्रिकॉशन' लेना, वह एक प्रकार की चंचलता है, कुछ ज़्यादा ही चंचलता है। उसकी ज़रूरत ही नहीं है। संसार अपने आप सहज रूप से चलता ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : कर्ता भाव से सावधानी नहीं, लेकिन 'ऑटोमैटिक' तो हो जाती है न?

दादाश्री : वह तो अपने आप हो ही जाती है।

प्रश्नकर्ता : कर्ता नहीं, लेकिन यदि सहज रूप से विचार आ जाए तो फिर विवेक बुद्धि से करना है, ऐसा?

दादाश्री : नहीं, अपने आप ही सबकुछ हो जाता है 'आपको' 'देखते' ही रहना है कि क्या होता है! अपने आप ही सबकुछ हो जाता है! अब, बीच में आप कौन हो? वह मुझसे कहो। आप 'शुद्धात्मा' हो या 'चंदूलाल' हो?

प्रश्नकर्ता : आप पूछ रहे हो कि बीच में आप कौन हो? तो बीच में तो मन है न?

दादाश्री : मन को हमने कहाँ मना किया है? मन में तो अपने आप कुदरती रूप से ही विचार आते रहते हैं और कभी विचार नहीं भी आते।

ऐसा है, मन तो अंतिम जन्म में भी हर क्षण चलता रहता है,

सिर्फ, उस समय गाँठों वाला मन नहीं होता, जैसा उदय आए वैसा होता है।

सोचना, वह मनोधर्म

इस संसार में सोचने जैसा कुछ है ही नहीं। सोचना, वही गुनाह है। जिस समय ज़रूरत हो, उस समय वह विचार आ ही जाता है। वह तो थोड़े समय सिर्फ काम के लिए ही, उसके बाद वापस बंद हो जाता है। फिर सोच-विचार करने के लिए एक मिनट बिगाड़ना, वह बहुत बड़ा गुनाह है। एक मिनट सोच-विचार करना पड़े, वह बहुत बड़ा गुनाह है इसलिए हम सोच-विचार में नहीं पड़ते।

हम, हर समय आपके साथ खेलते हैं, चर्चा करते हैं, फलाना करते हैं वह सब हम निर्दोष रूप से करते हैं, जिसमें राग-द्वेष नहीं होता, मनोरंजक, आनंद बढ़ाए इस तरह का हो, उसमें रहते हैं। बाहर वाले भाग को कुछ तो चाहिए न? और आत्मा, बस उसे जानता है कि ओहोहो! क्या-क्या किया और क्या-क्या नहीं, वह सब हम जानते हैं। करता भी है और जानता भी है। क्योंकि एक मिनट से ज़्यादा सोच-विचार नहीं करना है। वह तो उसकी ज़रूरत के अनुसार अपने आप विचार आ ही जाते हैं, उसका नियम ही कुछ ऐसा है और अपना काम हो जाता है। ज़्यादा सोचने से, तन्मयाकार होकर करने से पूरे गाँव की गंदगी भीतर घुस जाती है क्योंकि उस समय (तन्मयाकार के समय) 'वह' खुला रहता है। जैसे कि यह एयर कम्प्रेसर रहता है, वह हवा खींचता है न और यदि वह बांद्रा (मुंबई) की खाड़ी पर खींचेगा तो? सब में बदबू आने लगेगी। यदि इसे खुला रखेंगे न, तो सारी गंदगी ही घुस जाएगी इसलिए खुला ही नहीं रखना, स्पर्श ही नहीं करना।

तब कोई पूछे कि सोचना, वह क्या मेरा धर्म है? तब हम कहेंगे कि नहीं, तेरा नहीं है। वह तो, मन का धर्म है। उसमें तेरा गुनाह नहीं है लेकिन हमें, उससे अलग रहकर देखने की ज़रूरत है। ये लोग तो अपना धर्म नहीं निभाते। अपना धर्म क्या है?

प्रश्नकर्ता : देखने का।

दादाश्री : हाँ, देखने का। उसमें तन्मयाकार नहीं होना। बाकी, सोचना तो डिस्चार्ज है, वह अपने आप होता ही रहता है यदि थोड़ी-बहुत बात हुई तो अपना काम हो जाता है।

सहज भाव से व्यवहार

हम जो कुछ भी बोलते हैं, यदि उसे सोचकर बोलेंगे न तो? एक भी अक्षर नहीं बोल पाएँगे, बल्कि उल्टा ही निकलेगा। जो लोग सोच-विचार करके कोर्ट में गए न, उन्होंने गवाही भी गलत दी। बहुत सोच-विचार करके गया कि ऐसा कहूँगा और ऐसा कहूँगा, इस तरह से सोचकर फिर कोर्ट में जाता है। उस समय वह क्या बोलेगा?

प्रश्नकर्ता : 'व्यवस्थित' में जो बोलना है वही बोलेगा।

दादाश्री : उसका व्यवस्थित ही सब अव्यवस्थित हो चूका है, घोटाला कर देता है। अगर बगैर सोचे जाएगा न तो ठीक से बोल पाएगा। आत्मा की अनंत शक्तियाँ हैं। वहाँ पर पूर्व योजना करने की ज़रूरत ही नहीं रहती।

मानो कि आपको वकील ने कहा हो, आपको गवाही देने के लिए कोर्ट में जाना है, देखो! ऐसा बोलना है, ऐसा बोलना है। उसके बाद आप उसे बार-बार याद करो कि ऐसा कहा, ऐसा कहा, ऐसा बोलने के लिए कहा है, और उसके बाद वहाँ बोलने जाओगे तो कुछ और ही बोलोगे। इसलिए सहज भाव पर छोड़ दो। सहज की इतनी अधिक शक्ति है! यह सब हमारा सहज ही आप देखते हो न, है या नहीं? जब आप जवाब माँगते हो तब हम जवाब देते हैं या नहीं? जवाब हाज़िर ही रहता है। वर्ना, आपका कुछ काम नहीं होगा।

अंतर, समझने और सोचने में

सोचने से, सोचकर जो कुछ भी कर्म किया जाता है, उससे अज्ञान उत्पन्न होता है और निर्विचार से ज्ञान होता है। वह सहज होता

है! सोचकर किया गया, वह ज्ञान नहीं कहलाता। विचार अर्थात् वह सब मृत ज्ञान कहलाता है जबकि यह सहज, यह विज्ञान कहलाता है। यह चेतन होता है। कार्यकारी होता है जबकि सोचकर किया गया सबकुछ अज्ञान कहलाता है, ज्ञान नहीं कहलाता है। वह क्रियाकारी नहीं होता, परिणाम नहीं पाता। उसके बाद कहता है कि मैं जानता हूँ लेकिन होता नहीं। मैं जानता हूँ लेकिन होता नहीं। ऐसा रटता रहता है। आपने किसी व्यक्ति को ऐसे बोलते हुए कभी सुना है क्या?

प्रश्नकर्ता : बहुत से बोलते रहते हैं।

दादाश्री : सभी ऐसा कहते हैं, यही कहते हैं। यदि जान चूका है तो अवश्य होना ही चाहिए और यदि नहीं होता है तो समझना कि उसने जाना ही नहीं। जबकि सोचा हुआ ज्ञान, वह ज्ञान नहीं कहलाता। वह तो जड़ ज्ञान कहलाता है। जड़ विचारों से जो उत्पन्न होता है, वह तो जड़ है। विचार ही जड़ है।

प्रश्नकर्ता : यह जो ज्ञान है, वह सहज रूप से आता होगा या सहज रूप से होता होगा, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : उसने पूर्व के जन्मों में जो भी माल भरा हैं न, वह सब समझकर भरा है। वह सहज रूप से निकलता है। समझकर व जानकर भीतर माल भरा है। सोचा हुआ काम में नहीं आता। अगर समझकर भरा हो तो काम में आता है।

प्रश्नकर्ता : अगर समझकर भरा हो तो वह सहज में आ जाता है?

दादाश्री : अगर सहज में आएगा तभी वह विज्ञान कहलाएगा। वर्ना, विज्ञान ही नहीं कहलाएगा।

निरालंब होने पर, प्रज्ञा पूर्ण क्रियाकारी

प्रश्नकर्ता : जब विचार करने वाला विचार करता है तब देखने वाला कौन रहता है?

दादाश्री : देखने वाला आत्मा है। वास्तव में तो अपनी जो

प्रज्ञाशक्ति है न, वही सब देखने वाली है। वही आत्मा है लेकिन वह आत्मा खुद नहीं देखता। खुद की जो शक्ति है, वह काम करती है। उसने देखा तो बस हो गया। आप ज्ञाता-दृष्टा बन गए। अर्थात् वह जो प्रज्ञा है, मूल आत्मा का भाग, उससे सबकुछ देख सकते हैं। आप में प्रज्ञा उत्पन्न हो चुकी है लेकिन जब तक निरालंब नहीं होंगे तब तक प्रज्ञा पूर्ण रूप से काम नहीं करेगी। अभी तो आप ग्रंथियों में ही रहते हो न! जब ये ग्रंथियाँ खत्म हो जाएँगी तब काम आगे बढ़ेगा।

प्रश्नकर्ता : तब क्या सोचने वाला आत्मा नहीं है?

दादाश्री : मूल आत्मा ने सोचा ही नहीं। आत्मा ने कभी भी सोचा ही नहीं है। वह व्यवहार आत्मा की बात है। ऐसा है, व्यवहार आत्मा को निश्चय आत्मा से देखते रहना है। व्यवहार आत्मा क्या कर रहा है, उसे देखते रहना है।

प्रश्नकर्ता : एक साथ दो क्रियाएँ हो सकती हैं क्या?

दादाश्री : एक ही क्रिया हो सकती है। क्रिया तो अपने आप सहज रूप से ही होती रहती है। हमें देखने का पुरुषार्थ करना है। दूसरा सब तो होते ही रहता है। अगर इसमें आप नहीं देखोगे तो आपका देखने का बाकी रह जाएगा इसलिए (हमें) देखने वाले को (देखने का) पुरुषार्थ करना है। वह तो होता ही रहता है। फिल्म तो चल ही रही है। उसमें आपको कुछ नहीं करना पड़ता। वह अपने आप सहज रूप से चलती रहती है।

जैसे-जैसे विचारों को ज्ञेय बनाओगे वैसे-वैसे ज्ञाता पद मज़बूत होता जाएगा। आप विचारों को ज्ञेय स्वरूप से देखो, वह शुद्धात्मा का विटामिन है। जिसे विचार ही नहीं आते, वह क्या देखेगा? फिर उसे विटामिन किस तरह से मिलेंगे?

मन वश होता है, ज्ञान से

जब तक 'मैं चंदूलाल हूँ', वह ज्ञान है, वह भान है तब तक

मन के साथ लेना-देना है। तब तक मन के साथ तन्मयाकार होता है। अब हम शुद्धात्मा बन गए तो मन के साथ लेना-देना ही नहीं रहा। ज्ञाता-दृष्टा पद आ गया इसलिए मन वश हो गया कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : मन वश होने के बाद फिर ज्ञाता-दृष्टा पद स्वाभाविक चीज़ हो जाती है क्या?

दादाश्री : आपको मन वश हो ही गया है, अब प्रेक्टिस करने की ज़रूरत है। जैसे-जैसे मेरी बात सुनते जाओगे वैसे-वैसे मज़बूत बनते जाओगे, हमारे वचनबल से। हमारा वचनबल ही काम करता रहता है।

प्रश्नकर्ता : अभी तो हमारा मन वश नहीं रहता, तो मन वश करने के लिए क्या पुरुषार्थ करना है?

दादाश्री : वह ज्ञान से वश में रहेगा। हमने जो ज्ञान दिया है, वह मन को वश करने वाला ही है। उससे फिर आपको लोगों का मन वश में रहेगा।

प्रश्नकर्ता : नहीं दादा, पहले हमें अपने मन को वश में करने दो।

दादाश्री : पहले आपका मन, आपके वश में हो जाएगा और अगर आपका मन आपके वश में हो गया तो अन्य लोगों का मन भी आपके वश में हो जाएगा। जितना दूसरों का मन आपके वश हो गया, उतना आपका मन आपके वश हो गया। बाहर वालों के ऊपर से फिर आप अपना नाप लेना।

प्रश्नकर्ता : क्या उसका टेस्ट यह है कि अगर हमारा मन, हमारे वश में रहेगा तो दूसरे का मन भी हमारे वश में रहेगा?

दादाश्री : हाँ! अन्य कितनों का मन आपके वश रहता है, कितने अंश वश में रहता है, वह सब आपको देख लेना है।

मन वश रहने की निशानी

प्रश्नकर्ता : सामने वाले का मन वश में रहे, उस बारे में थोड़ा

विस्तार पूर्वक उदाहरण देकर समझाइए न, तो सभी एक्ज़ेक्टली (जैसा है वैसा) समझ सकेंगे।

दादाश्री : आप ऐसी जगह पर गए हो कि वहाँ दस व्यक्ति पी.एच.डी. हो, दस व्यक्ति ग्रेज्युएट हो, दस व्यक्ति मैट्रिक पास हो, दस व्यक्ति गुजराती ही पढ़े हो, दस व्यक्ति अनपढ़ हो, दस छोटे बच्चे डेढ़-दो साल के और दस बुज़ुर्ग साठ-पैंसठ साल के, वे सभी इकट्ठे होकर जाएँ तो वहाँ पर धर्म है। अर्थात् जहाँ पर छोटे बच्चे भी बैठे रहें, स्त्रियाँ बैठी रहें, बुज़ुर्ग औरतें बैठी रहें और विवाहित लोग बैठे रहें, वहाँ धर्म है। क्योंकि जहाँ पर सामने वाले का मन वश कर सकने वाला हो, वहाँ पर ही वे बैठ सकते हैं वर्ना, नहीं बैठ सकते। जिनका खुद का मन अपने वश हो गया हो, वे ही सामने वाले का मन वश कर सकते हैं। जो स्वतंत्र रूप से चलते हैं, जिनका मन संपूर्ण रूप से वश में है, वहाँ काम होता है!

अगर मन वश हो जाए तो आप सबकुछ कर सकते हो। लोग आपके कहे अनुसार चलेंगे वर्ना, आप सिखाने जाओगे न तो कोई एक अक्षर भी नहीं सीखेगा बल्कि उल्टा चलेगा। इस कलियुग की हवा ही ऐसी है कि जिससे उल्टा चलेगा। यदि कोई उल्टा चलता है, वह उल्टा-सीधा बोलता है तो भी हम उसका साथ नहीं छोड़ते।

सभी का मन वश रहता है, ज्ञानी को

प्रश्नकर्ता : दादा, इतने सारे व्यक्तियों को दादा के साथ अभेदता रहती है, वह किस प्रकार से रहती होगी?

दादाश्री : वही आश्चर्य है न! और लगभग पच्चीस हज़ार लोग अभेदता रखते हैं!

अपने महात्माओं का मन हमारे वश रहता है, जिन्हें चौबीसों घंटे दादा के अलावा दूसरा कुछ नहीं। जितना मैं कहूँ उतना ही करते हैं। स्त्रियाँ और पुरुष, सभी के। उसमें स्त्रियों का ज़्यादा रहता है।

स्त्रियाँ तो साहजिक हैं। साहजिक अर्थात् जो सहज हो चुके हैं उनके ही वश में रहेगी, वर्ना वश में नहीं रहती न!

प्रश्नकर्ता : स्त्रियों को कोई दखल ही नहीं रहता न? समर्पण से स्त्रियों को जल्दी प्राप्ति हो जाती है न?

दादाश्री : लेकिन स्त्रियों का ही मन वश करना आसान नहीं है। पुरुषों का तो आसान है, स्त्रियों का तो बहुत कठिन है। क्योंकि जहाँ पर मन को वश कर सकें ऐसे हो, वहाँ पर ही वे बैठ सकती हैं, वर्ना नहीं बैठ सकती।

प्रश्नकर्ता : आपको यह सब पता चल जाता है?

दादाश्री : सबकुछ पता चल जाता है कि इस व्यक्ति का मन संपूर्ण रूप से वश में रहता है। संपूर्ण रूप से मन वश रहना अर्थात् क्या कि हम जो कुछ भी कहें, उनका मन हमारे कहे अनुसार एडजस्ट हो ही जाता है!

साहजिक वाणी, मालिकी बगैर की

प्रश्नकर्ता : साहजिक वाणी अर्थात् क्या?

दादाश्री : जिसमें किंचित्मात्र अहंकार नहीं, वह। मैं इस वाणी का एक सेकन्ड भी मालिक नहीं बनता अर्थात् हमारी यह वाणी साहजिक वाणी है।

प्रश्नकर्ता : हमारी वाणी में तो साहजिकता नहीं है। यदि उसे छूट दे देते हैं तो झगड़ा करती है और ब्रेक लगाते हैं तो अंदर तूफान करती है।

दादाश्री : आपको कुछ नहीं करना है। छूट भी नहीं देना है और ब्रेक भी नहीं लगाना है। वह तो, जब खराब बोला जाए तब हमें 'चंदूभाई' से ऐसा कहना है, कि 'चंदूभाई, यह शोभा नहीं देता। आपने अतिक्रमण क्यों किया? प्रतिक्रमण करो।' 'हमें' तो अलग ही रहना है। कर्ता 'चंदूभाई' है और 'आप' ज्ञाता-दृष्टा हो, दोनों का व्यवहार ही अलग है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञाता-दृष्टा रहने से 'चंदूभाई' का काम ठीक से, एक्ज़ेक्ट होता है?

दादाश्री : बहुत अच्छा, एक्ज़ेक्टली हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : कुछ भी प्रयत्न किए बगैर एक्ज़ेक्टली हो जाता है?

दादाश्री : प्रयत्न करने से ही बिगड़ता है। 'चंदूभाई' सारे प्रयत्न करेंगे। इसे मैं टेपरिकॉर्डर क्यों कहता हूँ? क्योंकि यह साहजिक चीज़ है। इसमें मैं हाथ नहीं डालता इसलिए फिर यह भूल बगैर की निकलती है। ऐसी कितनी ही 'टेपें' भरी हुई हैं और यदि आपको एक 'टेप' भरनी हो तो उलटा-सीधा कर दोगे क्योंकि साहजिकपना नहीं है। साहजिकपना आना चाहिए न?

साहजिकपना लाने के लिए यदि खुद ज्ञाता-दृष्टा रहेगा तो साहजिकपना आएगा। जो कर्ता है, उसे कर्ता रहने दो और जो ज्ञाता है, उसे ज्ञाता रहने दो। 'जैसा है वैसा' होने दो तो सब ठीक हो जाएगा। इस ज्ञान का सारांश ही यह है।

दोनों अपनी-अपनी फर्ज़ बजाते हैं। आत्मा, आत्मा की फर्ज बजाता है और 'चंदूभाई', 'चंदूभाई' की फर्ज़ बजाते हैं। ज्ञाता-ज्ञेय का संबध रहना चाहिए। देह किस तरफ जा रही है, देह के कैसे-कैसे नखरें हैं, वे दिखाई देने चाहिए। वाणी कठोर निकलती है या सरल निकलती है, वह भी आपको दिखाई देना चाहिए लेकिन वह भी रिकॉर्ड है, वह दिखाई देनी चाहिए। कठोर या मधुर वाणी बोलना, वे सभी वाणी के धर्म हैं और इन पाँच इन्द्रियों के धर्म, इन सभी धर्मों को जानते रहना है। इसी काम के लिए यह मनुष्य जन्म है। वे सभी धर्म क्या कर रहे हैं, उन्हें जानते रहना है। अन्य बातों में नहीं पड़ना है।

तभी मन की सहजता, वाणी की सहजता, देह की सहजता आती है न! वह उसका फल है। देहाध्यास छूटते-छूटते सहजता आती है। जब सहजता आती है तब पूर्णाहुति कहलाती है क्योंकि आत्मा तो सहज ही है और इस देह की सहजता आ गई।

संसार, वह अहंकार की दखल

देह सहज अर्थात् स्वाभाविक, इसमें अपना दखल नहीं रहता। जिसमें अहंकार का दखल नहीं रहता, वह देह सहज कहलाती है। यह हमारी देह सहज कहलाती है अर्थात् आत्मा सहज ही है। अहंकार का दखल समझ गए आप? अहंकार चला गया अर्थात् सब चला गया। यह सारा संसार इगोइज़म की वजह से है। सारा इगोइज़म का ही आधार है। दूसरा कुछ भी बाधक नहीं है, यह इगोइज़म बाधक है। 'मैं', 'मैं'!

जितना सहज उतनी समाधि

प्रश्नकर्ता : वह तो, आपने सहज देह का प्रकार बताया लेकिन वह सहज कब होती है?

दादाश्री : सहज तो आपको यह जो ज्ञान दिया है न, यदि वह ज्ञान में परिणाम पाकर ये सभी कर्म कम हो जाएँगे तो खुद सहज होता जाएगा। अभी सहज हो रहा है लेकिन अंश रूप से हो रहा है। वह अंश-अंश सहज होते-होते संपूर्ण रूप से सहज हो जाएगा। अभी सहज के तरफ ही जा रहा है। देहाध्यास छूटने से सहज की तरफ बढ़ रहा है इसलिए अभी सहज ही हो रहा है। जितने अंश सहज हो जाएगा उतने अंश समाधि रहेगी।

अगर देह को कोई कुछ भी करे तो भी हमें राग-द्वेष नहीं होते। यह हमारी देह सहज कहलाती है। आपको अनुभव करके देख लेना है। हमें राग-द्वेष नहीं होते इसलिए हमारी देह सहज है। अतः सहज किसे कहेंगे, वह समझ लेना है। सहज अर्थात् स्वाभाविक। कुदरती रूप से स्वाभाविक। उसमें विभाविक दशा नहीं रहती। 'खुद मैं हूँ' ऐसा भान नहीं रहता।

रक्षण से रुका है, सहजपना

प्रश्नकर्ता : देहाध्यास कब जाता है?

दादाश्री : अगर कोई जेब काट ले और आपको कोई असर

न हो तो देहाध्यास चला गया। देह को कोई कुछ भी करे और यदि खुद उसे स्वीकार ले तो वह देहाध्यास है। 'मुझे क्यों किया?' तो वह देहाध्यास है। ज्ञानियों की भाषा में देह सहज हो गई अर्थात् देहाध्यास चला गया।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान के बाद वह साहजिकता कैसी रहती है? उसे समझाइए न!

दादाश्री : जितना उदय में आया हो उतना ही करे। *पोतापणुं* नहीं रखें।

अभी तो लोगों का *पोतापणुं* कैसा है? प्रकृति का रक्षण करने की बात तो है ही, बल्कि उल्टा 'अटैक' भी करते हैं, सामने वाले पर प्रहार भी करते हैं'। इसलिए यह *पोतापणुं* निकालना है न! प्रकृति का रक्षण करना, वह *पोतापणुं* है। अपने महात्मा करते होंगे क्या? इसीलिए सहज नहीं हो पाते, भाई। यह तो, ज़रा सा अपमान करे उससे पहले ही रक्षण कर लेते हैं, ज़रा सा कुछ और करे वहाँ रक्षण कर लेते हैं। वह सब सहजपना होने ही नहीं देता न!

अपमान करने वाला उपकारी

मूल वस्तु प्राप्त करने के बाद अब अहंकार का रस खींच लेना है। यदि रास्ते में कोई कहे, 'अरे, आप बेअक्ल हो, सीधे चलो' तो उस समय अहंकार खड़ा होता है, चिढ़ होती है। उसमें रूठने का रहा ही कहाँ? अब हमें चिढ़ जैसा कुछ रहता ही नहीं। अहंकार का जो रस है उसे खींच लेना है।

अपमान किसी को भी अच्छा नहीं लगता, लेकिन हम कहते हैं कि वह तो बहुत हेल्पिंग है। मान-अपमान, वह तो अहंकार का कड़वा-मीठा रस है। अपमान करने वाला तो आपका कड़वा रस खींचने के लिए आया कहलाएगा। 'आप बेअक्ल हो' ऐसा कहा अर्थात् वह रस सामने वाले ने खींच लिया। जितना रस खींच गया उतना अहंकार चला गया और वह भी बगैर मेहनत के दूसरे ने खींच लिया।

अहंकार तो रसवाला है। जब कोई अनजाने में निकालता है तब जलन होती है। इसलिए जान-बूझकर, सहज ही अहंकार को खत्म हो जाने देना है। यदि सामने वाला सहज ही रस खींच लेता हो तो उससे अच्छा और क्या है? सामने वाले ने कितनी ज़्यादा हेल्प की कहलाएगी!

मान में नुकसान-अपमान में फायदा

प्रश्नकर्ता : दादा, यह जो पूजे जाने की भीख है वह कैसे जाएगी? उसके सामने किस तरह से एडजस्टमेन्ट लेना है? उसमें कैसा उपयोग रखना है?

दादाश्री : वह तो, जब हम अपमान की आदत डाल देगें तब।

प्रश्नकर्ता : प्राप्त करनी है अयाचक दशा जबकि अंदर तो हर एक बात की भीख है।

दादाश्री : अयाचकपना तो जाने दो न, लेकिन यदि भीख चली जाए तो भी बहुत हो गया। यह भीख तो, अब यदि हम किसी के कम्पाउन्ड में से होकर जाते हो और वह व्यक्ति गाली देता हो तो रोज़ वहाँ से होकर जाना चाहिए, रोज़ गाली खानी चाहिए लेकिन उपयोगपूर्वक सहन करना चाहिए। वर्ना, उसे आदत पड़ जाएगी, बेशर्म हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : उपयोगपूर्वक सहन करना अर्थात् क्या?

दादाश्री : अगर कोई आपकी बहन को उठाकर ले गया हो, तो उस उठाने वाले के ऊपर आपको प्रेम आएगा? क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : द्वेष होगा।

दादाश्री : तब वह नींद में रहता है या उपयोगपूर्वक रहता है? हन्ड्रेड परसेन्ट उपयोगपूर्वक रहता है, एकदम उपयोगपूर्वक रहता है।

फिर जब चोरी करने जाता है, तब वहाँ उपयोगपूर्वक जागृति रखता होगा या सोता होगा?

प्रश्नकर्ता : उपयोगपूर्वक रहता है।

दादाश्री : अत: उपयोग समझ जाओ। यहाँ मोक्षमार्ग में तो उपयोग वाले ही काम आते हैं। जब कोई अपमान करे तब मुँह बिगड़ गया है, यदि ऐसा पता चले तो फायदा-नुकसान नहीं होता। नो लॉस, नो प्रोफिट और यदि बाहर मुँह बिगड़ा तो नुकसान होता है। नुकसान किसे होता है? *पुद्गल* को, आत्मा को नहीं और यदि बाहर मुँह नहीं बिगड़ा, क्लियर रहा तो उतना आत्मा का आनंद रहा। आत्मा का फायदा होता है न?

प्रश्नकर्ता : यदि मुँह बिगाड़ा तो पुद्गल को क्या नुकसान होगा?

दादाश्री : *पुद्गल* को तो नुकसान हो ही गया न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि वह जागृतिपूर्वक रहा तो उसका मुँह नहीं बिगड़ा।

दादाश्री : कितनों को तो, अपमान हुआ या उसे गुस्सा आ गया तो खुद को पता चल जाता है। बाद में मैं पूछता हूँ कि आपको पता चला क्या? तब कहता है, हाँ! पता चला। लेकिन वह छोड़ेगा किस तरह से? उसके बावजूद भी उसे छोड़ देना है। अंत में सहज ही करना है। वैसा सहज तो, जब बहुत समय तक सुनता रहेगा तब सहज होता जाएगा।

जागृत की दृढ़ता के लिए

प्रश्नकर्ता : हमारी कमी कहाँ रह जाती है?

दादाश्री : उतनी शक्ति, उतनी जागृति उत्पन्न नहीं हुई है। जागृति कमज़ोर है। हर क्षण की जागृति चाहिए। हमें एक क्षण भी कोई दोषित नहीं दिखाई देता। दोषित दिखने की वजह से ही तो ये सभी झंझटें हैं। क्योंकि यह विज्ञान ही ऐसा है। कोई दोषित है ही नहीं और अगर दोषित दिखाई देता है तो उपवास करना चाहिए। चंदूभाई से कहना कि उपवास करो।

प्रश्नकर्ता : दूसरे दिन कोई दोषित नहीं दिखाई देगा।

दादाश्री : दोषित है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : उपवास करने के बाद फिर दूसरे दिन कोई दोषित नहीं दिखाई देगा?

दादाश्री : नहीं! आपको उपवास करने को कहा, उसका कारण क्या है कि उतनी मज़बूती रहनी चाहिए, स्ट्रिक्ट बनना चाहिए। स्ट्रिक्टनेस रखनी चाहिए, निर्दय नहीं बनना चाहिए।

किसी के अहम् को दुभाना नहीं

प्रश्नकर्ता : उदाहरण के तौर पर इन्कम टैक्स में मेरी एक फाइल बाकी है। अब उस इन्कम टैक्स ऑफिसर को यह ज्ञान नहीं मिला है, अर्थात् उसे अहंकार है। अब वह अहंकार से मेरा कुछ बिगाड़ सकता है क्या?

दादाश्री : नहीं! आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकता, अगर आप उसे अहंकार से जवाब नहीं दो, तो।

प्रश्नकर्ता : मैं तो उसके पास जाता भी नहीं। मुझे उसके पास जाने की ज़रूरत भी नहीं पड़ती लेकिन यह फाइल रूटीन में आती है।

दादाश्री : उसमें कोई दिक्कत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि वह ऑफिसर अहंकारी हो तो मुझे कुछ नहीं कर सकेगा?

दादाश्री : उसे संडास जाने की शक्ति नहीं है तो आपका क्या करेगा? आपका कब करेगा कि जब आप ऐसा कहो कि ऐसे ऑफिसर को मैं देख लूँगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसा तो कोई नहीं करेगा।

दादाश्री : हाँ, आप सहज हो, नम्र हो तो आपको कुछ नहीं

होगा। यदि आप उसे दु:ख नहीं देते तो वहाँ व्यवस्थित में कोई बदलाव नहीं होगा। उसकी शक्ति ही नहीं है, बेचारे की!

प्रश्नकर्ता : अब एक तरफ तो आप ऐसा कहते हो कि उसे संडास जाने की शक्ति नहीं है और दूसरी तरफ कहते हो कि उसे अहंकार है।

दादाश्री : वह तो, यदि उसे दु:ख देंगे तो। सामने वाले को दु:ख देने की शक्ति उसमें है इसलिए हमारा कोई भी शब्द ऐसा नहीं निकलना चाहिए।

तब आएगा हल

प्रश्नकर्ता : इस संसार में दखलंदाज़ी किए बगैर क्यों नहीं रह पाते होंगे?

दादाश्री : वह तो, उसकी प्रेक्टिस है। अब, प्रेक्टिस बंद करनी पड़ेगी कि इस तरह से दखलंदाज़ी कभी भी नहीं हो। जब इस चाबी का उपयोग बार-बार करेंगे तब फिर जो दूसरा थोड़ा-बहुत माल बचा है उसके निकल जाने के बाद बंद हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि अगर हमें सहज होना है और देखते रहना है तो दखलंदाज़ी बिल्कुल भी किसी काम की नहीं।

दादाश्री : वह तो, पहले का जो माल भरा हुआ है, वह निकले बगैर नहीं रहेगा। भरा हुआ माल तो निकले बगैर रहेगा ही नहीं न! भरा हुआ माल अच्छा न लगे तो भी निकलता ही रहता है। उसे हम देखें तो सहज ही है। जब (प्रकृति) सहज होगी, दोनों सहज होंगे तब हल आ जाएगा लेकिन अगर अभी एक सहज हो गया तो भी बहुत हो गया।

❖❖❖❖❖

[6]

अंतःकरण में दखल किसकी?

बुद्धि करवाती है असहजता

प्रकृति कब सहज होगी? जब बुद्धि बहन विश्राम लेगी तब प्रकृति सहज होगी। जब तक कॉलेज में पढ़ते थे तब तक बुद्धि बहन आती थी, लेकिन अब पढ़ाई पूरी होने के बाद उसकी क्या ज़रूरत है? अब, उसे कह दो कि 'आप घर पर रहो, हमें आपकी ज़रूरत नहीं है।' उसे पेंशन दे देना है। बुद्धि चंचल बनाती है इसीलिए आत्मा का जो सहज स्वभाव है उसका स्वाद चखने को नहीं मिलता। बाहर का भाग ही चंचल है, लेकिन यदि बुद्धि को बाजू में बैठाए रखे तो सहज सुख बरतेगा! यदि कुत्ता दिखा तो ही बुद्धि कहेगी, 'कल उसे काटा था, उसी के जैसा यह कुत्ता दिखाई दे रहा है, यदि मुझे काट देगा तो?' अरे, उसके हाथ में क्या सत्ता है? 'व्यवस्थित' में होगा तो काटेगा। बुद्धि, तू बाजू में बैठ जा। अगर खुद की सत्ता होती तो लोग खुद का सीधा नहीं करते? लेकिन सीधा नहीं हुआ। बुद्धि तो शंका करवाती है। शंका होने से दखल होता है। हमें तो अपने निःशंक पद में रहना है। संसार तो शंका, शंका और शंका में ही रहने वाला है।

करो डिवैल्यू, एक्स्ट्रा बुद्धि की

मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार ये चारों जो अंतःकरण के रूप में हैं उसमें कोई दिक्कत नहीं, लेकिन यह जो एक्स्ट्रा बुद्धि है वह किसी काम की नहीं है।

यह संसार ही बुद्धि की दखल है। यदि यह बुद्धि नहीं होती तो

संसार रहता ही नहीं। हमारी बुद्धि खत्म हो गई है इसलिए हमें बुद्धि के ऊपर का ज्ञान रहता है। हमारी बुद्धि खत्म हो चुकी है। हम में बुद्धि नहीं है, हम अबुध हो गए हैं। यह हमारी सहजता ज्ञान पूर्वक की है।

प्रश्नकर्ता : सभी प्रकार की कुशलता प्राप्त करने के लिए बुद्धि चाहिए या फिर सहजता से भी प्राप्त हो जाती है?

दादाश्री : सहजता से ज़्यादा प्राप्त होती है। बुद्धि से उलझनें होती हैं, उसके बावजूद भी बुद्धि व्यर्थ नहीं है। बुद्धि बाद में हल ला देती है। सहजता के बजाय ज़्यादा अच्छा हल ला देती है लेकिन पहले बहुत उलझन में डाल देती है। जबकि सहजता बहुत हितकारी चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : यदि बुद्धि वाले व्यक्ति को सहज होना हो तो क्या करना पड़ेगा?

दादाश्री : वह तो, बुद्धि अपने आप कम होती जाएगी। यदि वह खुद तय करेगा कि इस बुद्धि की वैल्यू नहीं है तो वह कम होती चली जाएगी। आप जिसकी कीमत ज़्यादा मानते हो, वह भीतर में बढ़ती जाती है और जिसकी कीमत कम हो गई, वह घटती जाती है। पहले इसकी कीमत ज़्यादा मानी थी इसलिए यह बुद्धि बढ़ती गई।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का जो मैल है, बुद्धि का आवरण है, वह धुल जाना चाहिए न?

दादाश्री : जब तक हमें ज़रूरत है तब तक वह रहेगी। अभी तो लोग बुद्धि बढ़ाना चाहते हैं और बुद्धि कैसे बढ़े, उसके उपाय ढूँढ निकालते हैं। यह तो, बुद्धि का ही पोषण करता रहता है। फिर उसमें खाद डालता है। उससे बुद्धि बढ़ गई। सिर्फ, मनुष्य ही ज़रूरत से ज़्यादा सयाने हैं। बुद्धि का उपयोग बहुत ज़्यादा करते हैं।

प्रश्नकर्ता : यदि कोई ज्ञान लिए बगैर भी वह सीधे-सादे, सरल मार्ग से जाता है और उसकी समझ के अनुसार व्यवहार में सत्य और निष्ठा पूर्वक रहता है तो वहाँ पर जो क्लेश का अभाव रहता है और

यहाँ पर ज्ञान लेने के बाद जो क्लेश का अभाव रहता है, उनमें क्या डिफरेन्स (अंतर) है?

दादाश्री : वह जो क्लेश का अभाव था न, वह आप बुद्धि पूर्वक करते थे। और यह जो क्लेश का अभाव है, वह सहज भाव से रहता है। इसमें कर्तापन छूट जाता है।

समझ समाती है बुद्धि की दखल

प्रश्नकर्ता : तो बुद्धि को खत्म कर दीजिए। आप्तवाणी समझने के लिए तो बुद्धि का पना (सामर्थ्य) भी कम पड़ जाता है।

दादाश्री : इसलिए बुद्धि के साथ थोड़ी समझ भी बढ़ानी है। जो ज्ञान नहीं कहलाता और बुद्धि नहीं कहलाती, ऐसी समझ ले आओ। समझ, जो बुद्धि भी नहीं कहलाती है और ज्ञान भी नहीं। जब वह समझ पूर्ण हो जाती है तब उसे ज्ञान कहते हैं।

बुद्धि की दखल से रुका है आनंद

बुद्धि के चले जाने के बाद आनंद बहुत बढ़ता जाता है। यह आनंद का धाम ही है लेकिन बीच में बुद्धि दखल करती है।

प्रश्नकर्ता : यह जो आनंद का धाम है, वह क्या है?

दादाश्री : मैंने आपको जो दिया है, वह आनंद का धाम ही दिया है, मोक्ष ही दिया है। बुद्धि बीच में आती है इसलिए दखल करती है। जो बुद्धि संसार में हेल्प करती थी...

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जो रिएक्शनरी आनंद है, ऐसा आनंद नहीं होता लेकिन क्या इससे भी ऊँचा आनंद रहता है?

दादाश्री : नहीं! ऊँचे का मतलब मूल आनंद स्वरूप ही है। आपको आनंद ही दिया है लेकिन इसमें यह बुद्धि जो संसार में बड़ा बनाती थी। जो बुद्धि हमें मज़बूत करके बड़ा व्यापार करवाती थी, वही बुद्धि अभी बीच में आ रही है। यहाँ हिन्दुस्तान में, जितने

बुद्धिशाली, बुद्धि के धर्म हैं, उनमें से किसी में भी मोक्ष का मार्ग नहीं है। बुद्धि का मतलब मोक्ष से दूर और जो कभी भी मोक्ष में नहीं जाने दे, उसे बुद्धि कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि, वह ज़्यादा बंधन वाला मार्ग है।

दादाश्री : संसार में सब अच्छा कर देती है, फर्स्ट क्लास अच्छा कर देती है लेकिन कहती है, 'वहाँ नहीं जाने दूँगी।' अर्थात् इस तरफ बुद्धि का खिंचाव है और उस तरफ प्रज्ञा का खिंचाव है। प्रज्ञा कहती है, जो व्यक्ति हार्टिली हो, उसे मैं हेल्प फुल करूँगी, आगे ले जाऊँगी, ठेठ तक ले जाऊँगी, मोक्ष में ले जाऊँगी। हमारी बुद्धि चली गई इसलिए हमारा हार्ट इतना ज़्यादा प्योर है न, एकदम प्योर! मुझे कहते थे कि हार्टिली वाणी...

प्रश्नकर्ता : 'हृदय को स्पर्श करने वाली सरस्वती, इस वाणी का लाभ अनोखा है!' यह वाणी इतनी असरदायक है कि जिस पज़ल का हल बुद्धि से नहीं आता, उसका हल यह वाणी ला देती है।

दादाश्री : यह वाणी प्रत्यक्ष सरस्वती कहलाती है।

परेशानी है विपरीत बुद्धि के कारण

भाव कर्म-नो कर्म और द्रव्य कर्म के जाल को हटा दो, फिर देखो अबुध अध्यास से!

यदि अबुध अध्यास होगा तो वे जाले हट जाएँगे, बुद्धि से वे जाले नहीं हटेंगे। बुद्धि तो अपना काम करती रहेगी लेकिन उसका उपयोग नहीं करना है। यह तो, जहाँ साँप हो वहाँ बुद्धि के लाइट से देखने पर *अजंपा* (बेचैनी, अशांति, घबराहट) होता है जबकि 'व्यवस्थित' कहता है यदि 'तू तेरे रास्ते से जाएगा न, तो कोई भी नहीं काटेगा!' तब निराकुलता रहती है। बुद्धि तो संसार में जहाँ-जहाँ उसकी जितनी ज़रूरत है उतना उसका सहज प्रकाश देती ही है और संसार का काम हो जाता है, लेकिन ये तो विपरीत बुद्धि का उपयोग करते हैं कि यदि

साँप काट लेगा तो! वही *उपाधि* करवाती है। सम्यक् बुद्धि से सभी दुःख चले जाते हैं जबकि विपरीत बुद्धि सभी दुःखों को इन्वाईट (आमंत्रित) करती है।

बुद्धि तो यह देखने के लिए है कि सामने वाले को किस तरह से लाभ हो, लेकिन यह तो दुरुपयोग करती है, उसे व्यभिचारिणी बुद्धि कहा है। बुद्धि से यह कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। सहजासहज प्राप्त हो जाए ऐसा यह संसार है। यह तो भोगना ही नहीं आता, वर्ना ऐसा है कि मनुष्य के जन्म में भोग सकते हैं, लेकिन यह मनुष्य भोग ही नहीं सकता और वापस इनके टच (संपर्क) में आए हुए सभी जानवर भी दुःखी हुए हैं। अन्य करोड़ों जीव हैं उसके बावजूद भी सिर्फ यह मनुष्य ही दुःखी है, क्योंकि सब का दुरुपयोग किया, बुद्धि का, मन का, सभी का ही। सिर्फ यह मनुष्य ही निराश्रित है। यदि चोर सामने आ जाए तो 'मेरा क्या होगा' ऐसा विचार इन मनुष्यों को ही आता है। 'मैं कैसे चलाऊँगा? मेरे बगैर चलाएगा ही कौन?' इस प्रकार की जो चिंता करते हैं, वे सभी निराश्रित ही हैं, जबकि जानवर भगवान के आश्रित हैं। उन्हें तो आराम से खाना-पीना मिलता है। उनके लिए डॉक्टर, हॉस्पिटल जैसा कुछ भी नहीं है और उन लोगों के लिए अकाल जैसा भी कुछ नहीं है। हाँ! जो जानवर, मनुष्य के साथ में रहते हैं, जैसे गाय, बैल और घोड़ा वगैरह वापस दुःखी हुए हैं।

बुद्धि तीन प्रकार की हैं, एक, अव्यभिचारिणी बुद्धि, दूसरी, व्यभिचारिणी और तीसरी, सम्यक् बुद्धि। इन तीनों प्रकारों में, जिन्होंने किसी जन्म में 'जिन (तीर्थंकर)' के दर्शन किए हो, उन्हें सम्यक् बुद्धि प्राप्त होती है। यदि शुद्ध 'जिन' के दर्शन किए हो और वहाँ पर श्रद्धा बैठी हो तो वह बीज व्यर्थ नहीं जाता, इसीलिए अभी सम्यक् बुद्धि प्राप्त होती है और फिर सहज भाव से मोक्षमार्ग मिल जाता है।

बुद्धि के उपयोग से बनते हैं कॉज़ेज़

मनुष्य जो क्रिया करता है, उस क्रिया में कोई दिक्कत नहीं है। यदि उसमें बुद्धि का उपयोग हुआ तो तुरंत ही कॉज़ेज़ बंधते हैं। वर्ना,

जो क्रिया बुद्धि बगैर की होती है, वह सहज कहलाती है। बुद्धि का उपयोग होने से कॉज़ बंधा। अर्थात् यहाँ पर राग-द्वेष करता है न, किसी के साथ क्रोध करता है, मान या लोभ करता है, उसमें बुद्धि का उपयोग किए बगैर नहीं रहता और उससे कॉज़ेज़ बंधते ही हैं। जब बुद्धि का उपयोग होता है तब क्रोध करता है न? जब सामने वाला व्यक्ति गाली देता है तब बुद्धि का उपयोग करता है कि मुझे गाली दी, उसमें बुद्धि का उपयोग हुआ, इसलिए उसे तुरंत क्रोध आ जाता है। अगर कोई मेरे जैसा हो जिसमें बुद्धि नहीं है तो गाली दे तब भी क्या और नहीं दे तब भी क्या? जब छोटे बच्चे को कड़वी दवा पिलाते हैं न, तब वह मुँह बिगाड़ता है, उसे द्वेष कहते हैं, वह भी कॉज़ कहलाता है और यदि अच्छी चीज़ देते हैं तो वह खुश हो जाता है, वह भी कॉज़ कहलाता है। खाना, वह कॉज़ नहीं है। यदि आप ताड़ का फल खाओ तो उसमें भी कॉज़ नहीं बंधते। कॉज़ तो सिर्फ खराब बोलने पर ही बंधते हैं। आपको खराब के साथ क्या काम है? अब खा लो न चुपचाप! लेकिन वे ज़्यादा सयाने बनते हैं न!

नहीं मानना, बुद्धि की सलाह को

प्रश्नकर्ता : यदि अभी भी बुद्धि दखलंदाज़ी करती है तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : यदि बुद्धि इस तरफ दखलंदाज़ी करे तो हमें वहाँ से दृष्टि फेर लेनी चाहिए। यदि हमें रास्ते में कोई नापसंद व्यक्ति मिले तो हम इस तरफ मुँह फेर लेते हैं या नहीं? उसी तरह से जो आपमें दखलंदाज़ी करता है उससे उल्टी दिशा में देखना! दखलंदाज़ी कौन करता है? बुद्धि! बुद्धि का स्वभाव क्या है कि संसार से बाहर नहीं निकलने देती।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि कब खत्म होगी?

दादाश्री : अगर आप उसकी तरफ ज़्यादा देखोगे नहीं, दृष्टि बदलोगे तो फिर वह समझ जाएगी, वह खुद ही चली जाएगी। जब

तक आप उसे बहुत मान देंगे, उसका एक्सेप्ट करेंगे उसकी सलाह मानेंगे, तब तक वह दखलंदाज़ी करती रहेगी।

जहाँ इमोशनल वहाँ असहजता

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब मूल बात यह है दादा, कि यदि हम इमोशनल कम होंगे तो हमारा काम अच्छे से होगा?

दादाश्री : यदि बिल्कुल भी इमोशनल नहीं हुए तो बहुत अच्छा होगा, हन्ड्रेड परसेन्ट काम होगा।

प्रश्नकर्ता : ज्ञाता-दृष्टापना की नींव जितनी पक्की होगी उतना इमोशनल नहीं होंगे, जितना इमोशनल नहीं हुए उतना ज्ञाता-दृष्टापना पक्का है?

दादाश्री : यदि इमोशनल हुए तो ज्ञाता-दृष्टापना कच्चा रहेगा। अगर बिल्कुल भी इमोशनल नहीं हुए तो संपूर्ण ज्ञाता-दृष्टापना रहा, उसे साहजिकता कहते हैं। यदि इमोशनल हुआ व्यक्ति कोर्ट में गवाही देगा न, तो वह क्लम्ज़ी (अनगढ़) देगा। कैसा देगा? ठिकाना बगैर का देगा और साहजिक व्यक्ति तो बहुत अच्छा देगा।

प्रश्नकर्ता : कोर्ट में जो गवाही देते हैं, वे तो लुच्चे और होशियार व्यक्ति ही अच्छी तरह से देते हैं।

दादाश्री : वे प्रेक्टिकल हो चुके हैं। दूसरे लोगों का काम नहीं। दूसरे लोग तो इमोशनल हो जाते हैं। जो प्रेक्टिकल हो चुके हैं वे जड़ हो चुके हैं।

जहाँ ज्ञाता-दृष्टा वहाँ सहजता

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में सफल होने के लिए हमें किस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए?

दादाश्री : आपको तो, जहाँ पर इमोशनल न हो ऐसी दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। वे लोग तो इमोशनल से भी आगे, जड़ हो चुके हैं। वे इमोशनल नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन ऐसे लोग व्यवहार में जीत जाते हैं। उनके जैसे सफल होने के लिए क्या जड़ होना पड़ेगा?

दादाश्री : वे बेशर्म हो गए हैं।

प्रश्नकर्ता : तो क्या सफल होने के लिए हमें बेशर्म होना है?

दादाश्री : नहीं! यदि आप बेशर्म हो जाओगे तो फिर नीचे गिर जाओगे। आपको तो ज्ञाता-दृष्टा बनना है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या हमें इमोशनलपना छोड़ देना है?

दादाश्री : छोड़ना नहीं है। इस तरह से कुछ नहीं छूटता। यदि ज्ञाता-दृष्टा रहेंगे तो सब छूट जाएगा। छोड़ने से नहीं छूटता। ज्ञाता-दृष्टा रहोगे न, तो छूट जाएगा। एक ही दिन, रविवार के दिन, एक दिन शुद्धात्मा की कुर्सी पर बैठना, फिर सबकुछ अच्छा चलेगा! सिर्फ, ज्ञाता-दृष्टा रहना है। चंदूभाई क्या कर रहे हैं, उन्हें देखते रहना है।

प्रश्नकर्ता : अब चंदूभाई गलत करे या सही करे, उन्हें देखना है?

दादाश्री : गलत करते हैं या नहीं, वह गलत या सच होता ही नहीं। सच्चा-झूठा समाज के अधीन है। भगवान के वहाँ सच-झूठ नहीं है। भगवान के वहाँ फायदा-नुकसान भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो समाज और व्यवहार के अधीन हमारा जो भाव है, हमारे जीवन का व्यवहार भाग, उसे कैसा रखना है?

दादाश्री : व्यवहार तो ऐसा रखना है कि लोग उसकी प्रसंशा करे, उसे आर्दश कहे, ऐसा रखो। लोग कहे कि, 'भाई, चंदूभाई की बात नहीं करना, वे बहुत अच्छे व्यक्ति हैं।' जबकि ये तो खुद के घर में ही अच्छे नहीं दिखते। भाई, अगर पड़ोसी अच्छा न कहे तो हर्ज नहीं लेकिन घर में भी अच्छे नहीं दिखते।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसका क्या उपाय है?

दादाश्री : यह जो बताया वही, ज्ञाता-दृष्टा रहना।

प्रश्नकर्ता : हम ज्ञाता-दृष्टा तो रहते हैं लेकिन यदि चंदूभाई से उल्टे-सीधे काम हो जाते हो और परिणाम गलत आते हो, तो उन्हें सुधारने के लिए हमें क्या करना है?

दादाश्री : कुछ भी नहीं सुधार सकते। उल्टा बिगाड़ोगे। अगर अभी अस्सी प्रतिशत बिगड़ा है तो उसे नब्बे प्रतिशत करोगे।

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई का सुपरविज़न करना है और उसे गाइडेन्स वगैरह कुछ नहीं देना है?

दादाश्री : सुपरविज़न का मतलब सिर्फ देखना और जानना है, गाइडेन्स वगैरह कुछ नहीं देना है।

प्रश्नकर्ता : सुधारना या कोई कर्तापद में नहीं रहना है, सुधारने की ज़रूरत ही नहीं है?

दादाश्री : सुधरता ही नहीं। बल्कि सुधारने जाता है तो खुद बिगड़ जाता है। अगर इन पुरुषों को एक दिन के लिए रसोई सौंप दें न, तो सब बिगाड़ देंगे। कढ़ी-सब्ज़ी बिगाड़ देंगे, फिर दाल बिगाड़ देंगे, नमक, मिर्च, सब्ज़ी भी बिगाड़ देंगे, सबकुछ बिगाड़कर रख देंगे। क्योंकि बुद्धि वाला ऐसा सोचेगा कि यह ज़्यादा हो जाएगा, ऐसा होगा, वैसा होगा। इमोशनल हो गया इसीलिए बिगड़ा।

साहजिक का काम होता है सरल

प्रश्नकर्ता : स्त्रियाँ तो पचास लोगों का खाना बना सकती है, यदि सौ लोगों के लिए खाना बनाना हो तो पुरुष बनाते हैं।

दादाश्री : वे सब साहजिक हो गए हैं। जो साहजिक हो गया है, वह एक्सपर्ट बन जाता है।

प्रश्नकर्ता : वह तो हमारा काम नहीं है, इसलिए बिगड़ता है न, दादा। हम अपने व्यापार-धंधे के फील्ड में एक्सपर्ट है। चंदूभाई को किसी फील्ड में एक्सपर्ट तो बनाना पड़ेगा न?

दादाश्री : हमें क्या बनाना है ? वह बनकर ही आया है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर, वह किस फील्ड में एक्सपर्ट है उसे जानना तो पड़ेगा न ? वह जिस फील्ड में एक्सपर्ट है, उसे उस काम में तो लगाना पड़ेगा न ?

दादाश्री : हमें नहीं लगाना है, अपने आप सब चलता रहेगा। फील्ड वगैरह सब है। लाए हुए आटे को फिर से पीसने की आपको ज़रूरत नहीं है। अंदर इतना बड़ा साइन्स चलता है ! यदि एक ही दिन अंदर थोड़ा बाईल्स या कुछ कम पड़ जाएगा तो खत्म हो जाएगा। अंदर बहुत ज़बरदस्त चलता है, संभालने वाले हैं। यह बाहर तो आप निमित्त मात्र हो। आपमें पागलपन आ जाता है, 'यह मैं हूँ, मैं करता हूँ।' अरे, मैं कुछ नहीं करता। अगर आपको उन बाईल्स को डालने का कहा होता न, तो आप ज़्यादा डाल देते। क्या करते ? कल अच्छा पचेगा। पकौड़े खाएँगे और लड्डू-जलेबी खाएँगे। अंदर ज़्यादा डाल देते। फिर दस दिन के बाद बिल्कुल भी खाया न जाए ऐसा हो जाता है क्योंकि उसने ज़्यादा कोटे का उपयोग कर लिया। कुदरत ने जो कोटा तय किया है, वह ठीक है।

सूझ से होता है निकाल सहज

प्रश्नकर्ता : हमारी बुद्धि अंतर (भेद) करती है कि यह अच्छा और यह गलत ?

दादाश्री : वे बुद्धि से जो भेद किए हैं, वे काम में नहीं आते। जागृति से भेद करोगे, वे काम आएँगे।

प्रश्नकर्ता : वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : बुद्धि तो इमोशनल करवाती है। उससे जो भेद किए हैं, वे अपने किस काम के ? ज्ञान ही इटसेल्फ (स्वयं) भेद करता है कि यह सही नहीं है और यह सही है, वह सूझ पड़ती ही रहती है। आगे-आगे सूझ पड़ती रहती है और मन के डिस्चार्ज में आदर करने योग्य

कुछ है ही नहीं। जो आदर करने योग्य है, वह अपने आप सहज ही हो जाता है। ज्ञान जागृति, जो सूझ है, वह सब अलग ही कर देती है।

बुद्धि या प्रज्ञा, डिमार्केशन क्या?

प्रश्नकर्ता : यह काम प्रज्ञा ने किया है या बुद्धि ने, उसका पता किस तरह से चलेगा? बुद्धि और प्रज्ञा की व्याख्या क्या है? कुछ बात होती है तब बुद्धि दौड़ाते हैं, तब कहते हैं कि बुद्धि चलाई, तो बुद्धि क्या है?

दादाश्री : जो *अजंपा* (बेचैनी, अशांति, घबराहट) करे, वह बुद्धि है। प्रज्ञा में *अजंपा* नहीं होता। हमें ज़रा सा भी *अजंपा* हुआ तो समझ जाना कि बुद्धि का चलन है। यदि आपको बुद्धि का उपयोग नहीं करना हो तो भी उसका उपयोग होता ही है। वही आपको शांति से नहीं बैठने देती है। वह आपको 'इमोशनल' करवाती है। उस बुद्धि से हमें ऐसा कहना चाहिए कि 'हे बुद्धि बहन! आप अपने मायके चली जाओ। अब आपके साथ हमें कुछ लेना-देना नहीं है।' सूर्य का उजाला होने के बाद मोमबत्ती की ज़रूरत है क्या? अर्थात् आत्मा का प्रकाश होने के बाद बुद्धि के प्रकाश की ज़रूरत नहीं रहती।

अंतःकरण, वह पिछला परिणाम

प्रश्नकर्ता : मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार पर अपना प्रभाव पड़ना चाहिए न?

दादाश्री : मशीन पर कभी भी प्रभाव नहीं पड़ता, अर्थात् मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार पर प्रभाव पड़ता ही नहीं। वह तो, यदि अंतःकरण खाली हो जाए तो अपने आप सब ठीक हो जाता है।

अक्रम मार्ग के महात्माओं के अंतःकरण की स्थिति कैसी रहती है? उनकी दखलंदाज़ी बंद हो जाती है। लेकिन जब पिछले परिणाम आते हैं तब खुद उलझन में पड़ जाते हैं कि यह 'मेरा' ही परिणाम है। जबकि उससे पूछे कि, 'खुद के परिणाम है या किसी और के?' तब मैं कहता हूँ कि, 'ये तो किसी और के परिणाम हैं।'

यदि हम उनका साथ नहीं दें और उन्हें 'देखते' ही रहें तो हम अलग ही हैं। जब तक हम उन्हें देखते रहेंगे, तब तक चित्त की शुद्धि होती रहेगी। यदि सिर्फ चित्त ही ठीक हो जाए तो सबकुछ ठीक हो जाएगा। अशुद्धि के कारण चित्त भटकता रहता है इसलिए चित्त की शुद्धि होने तक ही यह योग ठीक से बिठा लेना है।

अहंकार के हस्ताक्षर के बगैर कुछ नहीं होता

प्रश्नकर्ता : अहंकार हमेशा अवरोधक है या उपयोगी भी है ?

दादाश्री : अहंकार के बगैर तो इस दुनिया में यह बात भी नहीं होगी। अगर एक चिट्ठी लिखनी हो न, तो उसे भी अहंकार की गैरहाज़िरी में नहीं लिख सकते। अहंकार दो प्रकार के हैं। एक डिस्चार्ज होता हुआ अहंकार, जो टॉप्स (लट्टू) के जैसा है और दूसरा चार्ज हो रहा जीवित अहंकार, जो शूरवीर के समान है। लड़ता भी है, झगड़ता भी है, सबकुछ करता है। जबकि उस डिस्चार्ज अहंकार के हाथ में तो कुछ भी नहीं है, लट्टू के जैसा है। अर्थात् अहंकार के बगैर तो दुनिया में कुछ भी नहीं होता लेकिन वह अहंकार डिस्चार्ज हो रहा है। आपको परेशान नहीं करेगा। अहंकार के बगैर तो काम ही नहीं होता। हमें ऐसा कहना पड़ता है कि मैं संडास गया था, मुझे संडास जाना है। जब वह डिस्चार्ज अहंकार हस्ताक्षर करता है तभी कार्य होता है, वर्ना, कार्य नहीं होता है।

अहंकार से चिंता, चिंता से...

संसार में जो बाइ प्रोडक्ट का अहंकार होता है, वह सहज अहंकार है, जिससे सब सहज चलता है। वहाँ अहंकार का ही कारखाना बनाया और अहंकार बिफर गया, कारखाना इतना अधिक बढ़ाया कि चिंता की कोई सीमा ही नहीं रही। अहंकार को ही बढ़ाता रहा। सहज अहंकार से ही यह संसार चलता है, नॉर्मल अहंकार से। वहाँ पर अहंकार को बढ़ाने की ज़रूरत ही नहीं। फिर इतनी उम्र में चाचा कहते हैं कि 'मुझे चिंता होती है।' उस 'चिंता' का फल क्या ? आगे

जानवर गति मिलेगी, इसलिए सावधान हो जाओ! अभी भी सावधान हो सकते हैं! जब तक मनुष्य (के जन्म) में हो तब तक सावधान हो जाओ! जहाँ चिंता होगी वहाँ जानवर गति का फल मिलेगा।

सभी जीव हैं, आश्रित

संसार, वह तो समसरण मार्ग है। उसमें हर एक मील पर, हर एक फर्लांग पर रूप बदलेंगे। मनुष्य को इन रूपों में तन्मयता रहती है इसीलिए मार खाता रहता है। पूरा संसार सहज मार्ग वाला है, सिर्फ, मनुष्य के जन्म में ही मार खाता है। जैसे कौआ, कबूतर, मछली, उन सभी के लिए क्या कोई हॉस्पिटल बनी है? क्या उन्हें रोज़ नहाना-धोना पड़ता है? उसके बावजूद भी कितने सुंदर दिखाई देते हैं! क्या उन्हें कुछ संग्रह करने का रहता है? वे सभी तो भगवान के आश्रित हैं। जबकि सिर्फ, ये मनुष्य ही निराश्रित हैं, सभी। फिर चाहे वे साधु हो, संन्यासी हो या और कुछ हो। जिन्हें कभी भी ऐसा लगे कि 'मेरा क्या होगा' वे सभी निराश्रित हैं! जो भगवान पर भरोसा नहीं रखते और संग्रह करते रहते हैं, वे सभी निराश्रित हैं, इसीलिए तो चिंता-परेशानी है।

सभी जीवों में सिर्फ, मनुष्य ही ऐसा है कि जो अहंकार का उपयोग करता है और इसीलिए यह संसार उलझा हुआ है। यदि सभी में सहज भाव रहा होता जानवरों के जैसे, भगवान के जैसे, तब तो मोक्ष की तरफ ही आगे बढ़ते। लेकिन अहंकार का उपयोग करता है न इसलिए तिर्यंच गति मिलती है। वर्ना, गधा, कुत्ता कौन बनता? फिर कुम्हार किससे मिट्टी ढोता? अतः गधे, कुत्ते, और गायें सभी संसार की सेवा करते हैं।

पहले तो जैसे प्रकृति नचाए वैसे आप नाचते थे। लेकिन उसमें भी यदि फॉरेनर्स के जैसे सहज रूप से रहे होते तो भी अच्छा था। लेकिन दखलंदाज़ी किए बिना नहीं रहता न, वापस अहंकार करता है। अहंकार, वह तो घोर अज्ञानता है।

डिस्चार्ज होता अहंकार...

उसके बावजूद भी अहंकार तो उपयोगी ही है। अहंकार के बगैर तो गाड़ी नहीं चलती। मूल अहंकार चला गया। जिससे संसार था, वह अहंकार चला गया। अब तो, यह जो डिस्चार्ज होता अहंकार है, उसे खाली करना है। वह अहंकार, उदय में आए बगैर खाली नहीं होगा न! जो क्रोध-मान-माया-लोभ भरे हुए हैं, वे सभी अहंकार से ही खाली होंगे न!

प्रश्नकर्ता : जिन्होंने ज्ञान लिया है उनके लिए हैं न?

दादाश्री : हाँ, उनके लिए। औरों के लिए तो यह कोई काम का ही नहीं। यह बात सुनने से भी कोई फायदा नहीं। किस तरह से मेल होगा? टिकट किस गाँव की और ट्रेन कहाँ जाती होगी!

प्रश्नकर्ता : फिर अंत में तो सूक्ष्म अहंकार रहता होगा न, आखिर में, डिस्चार्ज हो जाने के बाद?

दादाश्री : अंत:करण का सूक्ष्म अहंकार, वह कभी-कभी स्थूल में भी (देह में समाया) रहता है लेकिन वह अहंकार लट्टू (टॉप्स) के जैसा रहता है, इसलिए हमें परेशान नहीं करेगा।

प्रश्नकर्ता : तो उस डिस्चार्ज में अपना अहंकार कैसा रहता है?

दादाश्री : वह सहज हो चुका होता है। इसलिए जहाँ सहज होता है वहाँ अहंकार नहीं रहता।

कर्ताभाव से भव बंध जाता है

प्रश्नकर्ता : जहाँ उसे ऐसा लगता है कि मेरे बगैर नहीं चलेगा, उसे आप सजीव अहंकार कहते हो?

दादाश्री : जिसे हर एक क्रिया में, 'मैं करता हूँ' ऐसा भान है न, वही सजीव अहंकार है। नाई को भी तय करना पड़ता है कि मुझे इनकी हजामत करनी है तो वह हो ही जाती है और यदि कभी ऐसा

कहे कि 'मैं करता हूँ, मेरे बगैर कोई नहीं कर सकता', तो बल्कि खून निकालेगा!

इसलिए सहज होने पर सौ प्रतिशत फल मिलेगा। फिर यदि कुछ और करने गया तो चालीस प्रतिशत फल मिलेगा। अतः सहज का बहुत ऊँचा फल मिलेगा। अहंकार अंधा है, वह काम को पूरी तरह से सफल नहीं होने देता और वापस अगला जन्म बांधता है, सो अलग!

जहाँ सहज भाव वहाँ व्यवहार आदर्श

आदर्श व्यवहार हो और उस व्यवहार में खुद न हो। व्यवहार, व्यवहार के रूप से चलता रहे। खुद की गैरहाज़िरी में व्यवहार चलता रहे। सचमुच व्यवहार ऐसा ही है, लेकिन भ्रांति से यह एकता लगती है। यह भ्रांति किस आधार पर होती है? जागृति नहीं है, इसलिए। जागृति की कमी से भ्रांति हो जाती है। फिर चूक जाता है, वापस जागृति आती है लेकिन यह व्यवहार जागृति है, निश्चय जागृति नहीं है। व्यवहार जागृति में तो पूरा व्यवहार ही याद आता रहता है। बल्कि ज़्यादा याद आता है और व्यवहार में तो लोगों को जितनी जागृति रहती है उतनी ठोकर लगती है। व्यवहार में सहज भाव से रहना है, अजागृति किसी काम की नहीं है, जागृति भी काम की नहीं है। सहज भाव से रहने में ठोकर नहीं लगती।

विकृति से असहजता

इस गुलाब के पौधे का *निकाल* (निपटारा) करना है, क्या? नहीं, वह तो उसके सहज स्वभाव में ही है। इन मनुष्यों ने अपना सहज स्वभाव खो दिया है।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य जाति को इस में भेद है, यह अच्छा है, यह ऐसा है और नकल करता है। लेकिन इन्हें तो कोई भेद है ही नहीं।

दादाश्री : अर्थात् क्या है कि सहज स्वभाव खो दिया है।

सहज स्वभाव! सभी प्रकृतियों का सहज स्वभाव है। आत्मा तो सहज स्वभाव में ही है। हर एक जीवित वस्तु में आत्मा सहज स्वभाव में रहता है और प्रकृति भी सहज स्वभाव में रहती है। सिर्फ इन मनुष्यों की ही प्रकृति विकृत है। अर्थात् प्रकृति विकृत होने की वजह से आत्मा में विकृतता का ही फोटो दिखाई देता है इसलिए व्यवहार आत्मा भी विकृत हो जाता है। मनुष्य को सहज होने की ज़रूरत है। खाओ-पीओ लेकिन सहज। जबकि यह असहज रहता है। जब नींद आती है तब जागता है और जब नींद नहीं आती तब सो जाता है।

एकता मानी है अहंकार ने

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब ऐसा हुआ कि जो असहज है, वह सहज को बाँध लेता है?

दादाश्री : जब तक एकता मानी है तब तक।

प्रश्नकर्ता : एकता किसने मानी है?

दादाश्री : अहंकार ने एकता मानी है, इसलिए।

प्रश्नकर्ता : जब तक भेद ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ हो तब तक वह कैसे समझ में आएगा?

दादाश्री : समझ में आता ही नहीं न! जब तक अहंकार है तब तक 'इट हैपन्स' कैसे कहेंगे? जब तक अहंकार है तब तक वह किस प्रकार का पागलपन करेगा उसका क्या भरोसा? जबकि आपके अहंकार का अमुक भाग 'ज्ञान' लेने के बाद चला जाता है। जो चार्ज अहंकार है, जो दखल करने वाला अहंकार है वह चला जाता है और जो 'इट हैपन्स' वाला डिस्चार्ज अहंकार है, वह रहता है। इसीलिए सब समझ में आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : डिस्चार्ज करने के लिए, *निकाल* करने के लिए अहंकार रहता है।

दादाश्री : 'इट हैपन्स' में जो चाहिए, वह डिस्चार्ज अहंकार रहता है।

जो सहज उदय हुआ है वह सहज अस्त होता है

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस कर्तापना के साथ अहम् का भाव शामिल है।

दादाश्री : हाँ, वह ?

प्रश्नकर्ता : ये जो संसारी जीव हैं न, इनमें जो कर्तापना का अहम् रहता है, उसे खत्म कर देना कोई आसान बात नहीं है।

दादाश्री : नहीं, सब से आसान बात वही है। जो सब से आसान बात है, वह है अहंकार को खत्म करना! क्रोध-मान-माया-लोभ को बंद करना, वह सब से आसान बात है। बाकी, कष्ट सहन करने से क्रोध-मान-माया-लोभ कभी भी खत्म नहीं होते। चाहे कितने भी कष्ट सह लें, कितनी भी मेहनत कर लें तो भी वह अहंकार नहीं जाता।

सहज रूप से अहंकार बिल्कुल चला जाता है। उसका उपाय ही सहज है! लेकिन खुद सहज नहीं कर सकता न ! जो खुद विकल्पी है, वह निर्विकल्पी कैसे बन सकता है? वह तो, जिन्हें अकर्ता पद प्राप्त हो चुका है, जो मुक्त पुरुष हैं यदि हम उनके पास जाएँगे तो वहाँ वे सहज रूप से यह काम कर देंगे।

अर्थात् अहंकार, वह सहज रूप से चला जाता है क्योंकि वह सहज रूप से ही उत्पन्न हुआ है। वह मेहनत से उत्पन्न नहीं हुआ है और खत्म हो जाता है, वह भी सहज रूप से! बल्कि जितनी मेहनत करते हैं न, उतना अहंकार बढ़ता जाता है!

यह जो संसार की क्रिया हो रही है, उसमें कोई दिक्कत नहीं है लेकिन उसमें जो चंचलता उत्पन्न होती है, उसमें दिक्कत है। क्रिया बंद नहीं करनी है। बंद होगी भी नहीं। उसमें जो चंचलता उत्पन्न हो जाती है, जो सहजता टूट जाती है, उससे कर्म बंधते हैं। यह जो

क्रिया करते हैं उसमें कोई दिक्कत नहीं है, सभी क्रियाओं में कोई दिक्कत नहीं हैं लेकिन उसमें चंचलता नहीं होनी चाहिए।

ज्ञान प्राप्ति के बाद उनमें चंचलता नहीं रहती, सहजता रहती है। ज़रा सा भी खुद का धक्का नहीं होता, बाहर की क्रिया अपने आप ही होती रहती है।

प्रकृति और आत्मा के बीच की चंचलता चली गई, उसे साहजिकता कहा जाता है।

कर्म बंधन किससे ?

प्रश्नकर्ता : जो नए कर्म बंधते हैं, वे बाह्य प्रकृति के कारण ही बंधते हैं ?

दादाश्री : वे जो नए कर्म बंधते हैं, वे तो अपने अहंकार और आज की अपनी समझ और ज्ञान के आधार से बंधते हैं। कर्म उल्टे और सीधे दोनों तरह के बंधते हैं और बाद में प्रकृति हमें ऐसे संयोगो में रखती है। यह बहुत सूक्ष्म बात है।

प्रश्नकर्ता : सहज रूप से जो क्रिया होती है, उसमें कोई कर्म नहीं बंधता ?

दादाश्री : बंधता ही नहीं! यह आपके डिस्चार्ज में भी कर्म नहीं बंधता। डिस्चार्ज अहंकार ऐसा है कि वह कर्म नहीं बाँध सकता। वह अहंकार कर्म से छुड़वाने के लिए है। बंधे हुए कर्मों को छुड़वाने के लिए वह अहंकार है। जो बंधे हुए हैं, उन्हें छुड़वाने के लिए कोई तो चाहिए न ? अत: वह छुड़वाने वाला अहंकार है।

जहाँ देहाध्यास छूटा वहाँ सहजता

प्रश्नकर्ता : अब, आत्मभान में आने के बाद में उसका जो सारा व्यवहार होता है, क्या वह सहज व्यवहार होता है ?

दादाश्री : खुद के भान में आ जाने के बाद व्यवहार में कुछ लेना-देना ही नहीं रहा न! व्यवहार चलता ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् उसका व्यवहार उदय रूप होता है क्या?

दादाश्री : बस, और कुछ होता ही नहीं। कर्तापन छूटने के बाद आत्मभान में आता है। कर्तापन छूटा तो उदय स्वरूप रहा। फिर यह अपने आप चलता है और वह भी अपने आप चलता है, वे दोनों अपनी अपनी तरह से चलते ही रहते हैं।

देहाध्यास चले जाने से आत्मा, अपने स्वभाव में रहता है और देह, अपने स्वभाव में रहता है। देहाध्यास में दोनों का मेल था, एकाकार होने का। वह देहाध्यास चला गया, इसलिए यह देह, अपने काम में और आत्मा, अपने काम में, उसे सहजता कहते हैं।

...तब आती है सहज दशा

डिस्चार्ज अहंकार पूरा होने के बाद, देह जो क्रिया करती है, वह सहज क्रिया कहलाती है, एकदम सहज। उस समय आत्मा भी सहज और यह भी सहज। दोनों अलग और दोनों सहज। अत: जब यह डिस्चार्ज अहंकार पूरा हो जाता है तब सहज दशा आती है।

पुद्गल, अपने स्वभाव में आ गया। *पुद्गल* नियम में आ गया। क्योंकि जो दखल करने वाला था वह चला गया। *पुद्गल* हमेशा नियम के अनुसार ही रहता है लेकिन यदि दखल करनेवाला नहीं रहा तो! जैसे कि एन्जिन में कोयले वगैरह भरकर सबकुछ कम्प्लीट कर दें और यदि ड्राईवर न हो, तो वह अपने आप चलता ही रहेगा, उसका स्वभाव ही है। यदि दखल करने वाला भीतर बैठा हो तो वह रोकेगा, फिर चालू करेगा। यदि *पुद्गल* में दखलंदाज़ी न हो तो यह एकदम साफ होता ही रहेगा लेकिन यह दखलंदाज़ी करता है। दखल करता है इसलिए फिर दखलंदाज़ी हो जाती है। दखलंदाज़ी करने वाले कौन हैं? वे सभी अज्ञान मान्यताएँ और आपत्तियाँ!

❖❖❖❖❖

[7]

ज्ञानी प्रकाशमान करते हैं अनोखे प्रयोग

अंतःकरण की शुद्धि के साधन

प्रश्नकर्ता : यह बुद्धि जो हमें सहज नहीं होने देती, उसे शुद्ध करने के लिए पाँच आज्ञा के अलावा अन्य कोई साधन है क्या?

दादाश्री : यदि यहाँ पर सभी डॉक्टरों को इकट्ठा करे तो वे 'दादा भगवान ना असीम जय जयकार हो' बोलेंगे क्या? कितने बोलेंगे? एक भी नहीं बोलेगा। बुद्धि घुस गई है न, इसलिए शुक्ल अंतःकरण खत्म हो गया!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् बौद्धिक परिग्रह बढ़े, इसलिए बुद्धि बढ़ी?

दादाश्री : हाँ, इसलिए सहज होने की ज़रूरत है। उसमें ऐसा सहज होना चाहिए, साथ में फिर प्रतिक्रमण भी करना चाहिए कि 'कितने दिनों से मैं यह बोलना चाहता हूँ, मुझसे बोला नहीं जाता, तो मेरे अंतराय दूर कीजिए।' ऐसा करते-करते सब ठीक हो जाएगा और अच्छी तरह से बोला जाएगा। फिर तन्मयाकार होकर अच्छी तरह से बोला जाएगा। यदि बुद्धि ज़रा सी भी बढ़ी तो शुक्ल अंतःकरण खत्म हो जाता है।

खुद अलग हो गया यानी कि खुद को अपने आप से अलग कर लिया और फिर 'दादा भगवान ना असीम जय जयकार हो' गाने में तन्मयाकार हो गया तो मन में जो विचार आ रहे हों, वे भी बंद हो जाएँगे! अंतःकरण शुद्ध होता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् पढ़ाई करने से बुद्धि बढ़ी है न? तो उस हिसाब से तो अनपढ़ रहना अच्छा है?

दादाश्री : अब लोगों को यह कैसे पता चलेगा? कृपालुदेव ने इतना ही कहा कि शुक्ल अंतःकरण, लेकिन शुक्ल अंतःकरण किसे कहेंगे, वह किस तरह से समझ में आएगा? मोक्षमार्ग पूरा हार्टिली मार्ग है। हम में एक परसेन्ट भी बुद्धि नहीं है, तभी तो पूरा मोक्षमार्ग खुला हुआ है न?

दादा करवाते हैं प्रयोग सहजता के लिए

अपने यहाँ ज़ोर से ताली किस लिए बजाते हैं? सहजता लाने के लिए। जो असहजपना था, उसको खत्म करने के लिए यह सब है। यह सहज प्रयोग है। सहजता आ जाने के बाद किसी प्रकार का भय ही नहीं रहता न! भय नहीं रहता, घबराहट नहीं होती। ऐसा कर सकते हैं और ऐसा नहीं कर सकते, जिनके मन में ऐसे विकल्प होते हैं, उन्हें भय लगता है। आपको तो किसी प्रकार का भय ही नहीं रहा न। सारे भूत निकल जाने चाहिए।

यदि कोई रास्ते में कपड़े उतरवा ले तो फिर आपको संकोच रहा करेगा न या नहीं?

प्रश्नकर्ता : अब नहीं रहेगा।

दादाश्री : अब किसी प्रकार का संकोच नहीं रहेगा। इसलिए यह सहजता करवाते हैं कि किसी भी स्थिति में संकोच उत्पन्न ही न हो।

बड़ौदा में घड़ियाली पोल में उपाश्रय है, ज्ञान होने से पहले मैं वहाँ गया था, उस उपाश्रय में दर्शन करने के लिए, वहाँ कोई महाराज आए होंगे। उस समय मैं सफेद कोट पहनता था और जूते अभी के जैसे नहीं पहनता था, थोड़े चमकीले पहनता था। उन दिनों थोड़ा रौब था न! वहाँ पर डेढ़ घंटे तक बैठने के बाद बाहर निकला तो वे जो चमकीले जूते थे, उन्हें कोई ले गया। जो अच्छे जूते हों उन्हें ही कोई ले जाएगा न? उन्हें ले गया उसका खेद तो नहीं हुआ लेकिन अब बाज़ार में कैसे जाऊँगा? लंबा कोट और पैर में जूते नहीं तो भीतर संकोच हुआ। फिर वहाँ घड़ियाली पोल में से निकलते ही तुरंत रिक्शा

कर लिया और घर आ गया। लेकिन संकोच हुआ ऐसा मैंने अनुभव किया। इसलिए मुझे ऐसा विचार आया कि यदि कोई कहेगा, कि कपड़े निकाल दो तो क्या करूँगा? तो क्या संकोच हुए बगैर रहेगा? यानी पहले से ही संकोच दूर करो, सहजता लाओ।

इसलिए ये सारे सहजता के प्रयोग करवाते हैं। ज्ञान तो आपको है ही लेकिन सहजता होनी चाहिए न? किसी भी प्रकार का भय नहीं रहना चाहिए, चाहे कैसी भी स्थिति हो। यदि सहज हो जाओगे तो मोक्ष होगा, तो भगवान स्वरूप हो जाओगे। खुद भगवान हो ऐसा भान होगा। जहाँ असहजता से ये सभी एटिकेट के भूत रहते हैं न, वहाँ कुछ भी नहीं होता, इसलिए सहज होने की ज़रूरत है।

अंत में सहज ही होना है। दिनोंदिन सहज ही होना है। यहाँ पर, ये सभी सहज होने के साधन हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा कहते हैं वैसी पूर्ण सहज स्थिति किस तरह से आएगी?

दादाश्री : जो इन दादा को भजते हैं न, वे सहज स्थिति को ही भज रहे हैं इसलिए आप उतने सहज हो जाओगे।

एटिकेट निकले तो हो जाए सहज

प्रश्नकर्ता : तो दादा, उस समय तो मैं ऐसे ताली बजाने का विरोध करता था लेकिन आज तो सभी के बजाय मैं ज़्यादा ज़ोर से ताली बजाता हूँ, तो ऐसा क्यों होता होगा?

दादाश्री : ऐसा है न, ऐसा कोई नियम नहीं है कि ताली बजाने से ही मोक्ष होगा और ऐसा भी कोई नियम नहीं है कि चुपचाप बैठकर पढ़ते रहेंगे तो मोक्ष होगा। मोक्ष जाने का नियम अर्थात् कैसा है? व्यक्ति सहज रहता है या नहीं, उतना ही, सहज! चुपचाप बैठे रहना और ताली नहीं बजानी, (पद गाना) पढ़ना उसमें एटिकेट आ गया, थोड़ा सा तिरस्कार आ गया और ये लोग कहेंगे, ताली बजाने से चित्त एकाग्र नहीं रहा, स्थिरता चली गई। इन दोनों की ज़रूरत नहीं है।

यह जो चिढ़ घुस गई है न, उस चिढ़ को निकालने के लिए यह सब करते हैं। अनंत जन्मों से जो यह चिढ़ घुस गई है, उस चिढ़ को निकालने के लिए प्लस-माइनस करके सहज होना है।

इसमें जैन रहते हैं, सभी रहते हैं लेकिन किसी को कोई दखल ही नहीं, किसी को आपत्ति ही नहीं। जबकि पूरा संसार आपत्ति और परेशानी में ही फँसा हुआ है। आपत्ति, परेशानी और नियम में ही सभी फँसे हुए हैं। यहाँ पर आपत्ति भी नहीं और परेशानी भी नहीं। यहाँ तो छोटे बच्चों को भी अच्छा लगता है, बूढ़ों को भी अच्छा लगता है, अनपढ़ को भी अच्छा लगता है, पढ़े लिखे को भी अच्छा लगता है, हर एक को यहाँ पर अच्छा लगता है। इस वातावरण में सभी को आनंद ही रहता है। इसलिए छोटे बच्चे भी यहाँ से छः घंटे तक नहीं हटते। जहाँ यथार्थ धर्म रहता है वहाँ पर सभी रहते हैं और जहाँ एटिकेट वाला रहता है वहाँ पर धर्म जैसी चीज़ ही नहीं होती।

गरबा से होती है प्रकृति सहज

अपने यहाँ ये जो गरबा कर रहे हैं, वे सहज हुए हैं जबकि बाहर वाले असहज हैं। अर्थात् यह हम बीच में किसलिए बैठते हैं, हमारे बैठने का क्या कारण है? आपको सहज करना है। किसी भी तरह से आप सहज हो जाओ। यह सारी क्रिया क्या ऐसी है कि जो ज्ञानी को शोभा दें? क्या ज्ञानी ऐसे तालियाँ बजाते होंगे?

अपना विज्ञान कैसा है कि सहज रूप से करो, किसी भी तरह से सहज हो जाओ। जब हम यात्रा पर गए थे न तब एक सौ पंद्रह लोगों की दो बोगियाँ थी, जॉइन्ट की हुई। तो किचन अंत तक चलता रहता था। चाय पानी भी अंत तक चलता रहता था। रसोई वहीं की वहीं सब। अब, सभी यात्रा में निकले हो तो ऐसे गाड़ी में ही कब तक बैठे रहेंगे? इसलिए जब बड़ा स्टेशन आता तो वहाँ पर उतर जाते थे। वहाँ पर बीस मिनट तक गाड़ी खड़ी रहती, उतने समय तक सभी गोल-गोल घूमकर गरबा करते।

डर या संकोच रहित, वह सहज

प्रश्नकर्ता : तो क्या ऐसे रास्ते पर नाचते-नाचते जाएँ तो वह सहज हुआ कहलाएगा?

दादाश्री : सहज ही हुआ कहलाएगा। सहज अर्थात् क्या? लोगों से डरना नहीं। किसी से नहीं डरना, उसे सहज कहते हैं। अपने यहाँ एक भाई आते हैं, एक दिन मैंने उन्हें फूलों की माला पहनाई और कहा, 'लो, अब इस माला को पहनकर यहाँ से घर तक जाओ।' यानी, यह तो आज्ञा हो गई इसलिए अब उनके पास आज्ञा का पालन किए बगैर कोई चारा नहीं, तो फिर क्या हुआ? जैसे ही वे गली में से बाहर निकले तो उनके मन में ऐसा लगा कि कोई देख लेगा तो? इसलिए उन्होंने क्या किया कि ऐसा रास्ता ढूँढ निकाला कि जिसमें माला नहीं निकालनी पड़े और आज्ञा का पालन भी हो जाए और लोगों के शिकंजे में नहीं आए। इसलिए वहाँ से ही उन्होंने रिक्शा किया और आँखें बंद करके बैठ गए और घर के दरवाज़े के सामने रिक्शा रुकवाया। फिर दूसरे दिन मुझे यह सब बताया। तब मैंने कहा, 'किसलिए डरते हो? इन गाय-भैंसों से क्यों नहीं डरते? उनमें भी ऐसा ही आत्मा है और इनमें भी ठीक वैसा ही है। इनसे क्यों नहीं डरते?' तब कहने लगे 'वहाँ पर शर्म नहीं आती।' तब मैंने कहा, 'उनमें और इनमें फर्क नहीं है। सिर्फ देखने में मनुष्य दिखाई देता है, उतना ही फर्क है।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर भी ऐसा कुछ होता है तो प्रकृति नहीं करने देती, तब क्या करना चाहिए?

दादाश्री : हाँ! यदि नहीं करने दें तो आपको उसे भी जानना चाहिए। आपकी इच्छा है और नहीं करने देती, उसके लिए आप ज़िम्मेदार नहीं हो। यात्रा में तो हर एक स्टेशन पर यह सब, ऐसे गरबा करते थे। फिर भी थकान नहीं लगती। मुक्त मन से, किसी के दबाव में आने की ज़रूरत नहीं। किसी की कैसी शर्म? यदि शर्म लगने लगे तो आपको समझना नहीं चाहिए कि चंदूभाई कच्चे पड़ रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : दूसरों का तो कुछ रहता ही नहीं, खुद के अंदर ही रहता है।

दादाश्री : खुद का भय ही ऊपरी है, दूसरों को तो फुरसत ही नहीं है।

पोतापने से हो गई जुदाई

सहज अर्थात् क्या? जो सब करे वही खुद को करना है, खुद का अपना नहीं। *पोतापणुं* नहीं रखना चाहिए। ये तो सब अपना-अपना अलग कर लेते हैं न? फिर अंदर कुढ़ते रहते हैं और यदि सब करे वैसा ही करेंगे न, तो *पोतापणुं* नहीं रहेगा। सहज होंगे, सहजता आएगी। हमें वह बहुत पसंद है। प्रकृति की असहजता के कारण आत्मा असहज हुआ। इसलिए मूल इस प्रकृति को सहज करना है। जिस समय सभी बोल रहे हो उस समय बोलना चाहिए। गा रहे हो उस समय गाना चाहिए, इसीलिए तो अपने यहाँ गाने गवाते हैं। वर्ना, गाने गवाने का कारण क्या है? प्रकृति को सहज करने के लिए है। मन में से निकल जाए कि मुझसे ऐसा नहीं होगा और मुझसे ऐसा होगा, ऐसा सब निकल जाए।

सत्संग में जुदाई नहीं पड़नी चाहिए। जैसा सब करे वैसा ही आपको करना चाहिए। अगर आपको अंदर स्थिर करना हो तो आप ऐसे स्थिर हो जाएँगे तो होगा। वह प्रकृति सहज अर्थात् क्या कि बाहर का हम जैसा करेंगे वैसा ही करना है। यदि खुद का अलग करने जाएगा तो उसका अलग से दिखाई देगा। अलग करने वाले को आप पहचानते हो क्या?

अब ये भाई, इन पाँच-सात लोगों की टोली अलग बैठी है। अरे भाई, ज्ञानीपुरुष खुद इतने ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ लगाकर बुला रहे हैं, तो कुछ होगा या नहीं? लेकिन यह सब ओवरवाईज़पना (सयानापन) है। यदि प्रकृति को सहज करोगे तो काम होगा। सहज अर्थात् वर्क व्हाइल यू वर्क एन्ड प्ले व्हाइल यू प्ले। फिर ऐसा दिखाई देगा। ये सभी साथ चलने वाले। आप तो संपूर्ण प्रकार से साथ हैं और ये तो जुदाई

रखे ऐसे व्यक्ति, लेकिन धीरे-धीरे सब कम कर दिया, फिर एकता हो गई। जुदाई रखने में क्या होता है? वह अलग ही दिखाई देता है।

सहजता के लक्षण

सहज किसे कहा जाता है कि यहाँ एक व्यक्ति पाँच बजे आया, वह नौ बजे यहाँ से उठे। तब तक सभी की समूह क्रिया क्या चल रही है, सभी दादा भगवान बोलते हैं तो वह भी दादा भगवान बोलता है। सभी गाते हैं तो वह भी गाता है फिर सभी गरबा गाते हैं तो वह भी गरबा गाता है। वह सब सहज, उसमें खुद का कुछ भी नहीं। खुद की डिज़ाइन अनुसार नहीं करें। अब यदि वहाँ खुद का ड्रॉइंग बनाए तो वह सहजता चूक गया कहा जाएगा। वहाँ लोग खुद का ड्रॉइंग बनाते हैं न? क्योंकि अपना विज्ञान ही ऐसा है कि यदि आप मन को ऐसा कह दो, ये सब कहे उसके अनुसार ही करना है तो मन खुश हो जाएगा और इन सभी के जैसा करने में उसे आनंद भी होता है। लेकिन यदि अपने मन में थोड़ा सा भी खुद का ड्रॉइंग बनाया तो फिर डूबकी लगानी पड़ती है। वह डोज़िंग (सहजता चूक गए) कहा जाता है।

इसलिए जब वे लोग गाते हों, उस समय हमें गाना है, वे कूद रहे हों तब कूदना है। यहाँ सभी कूद रहे हों तब हमें भी कूदना है। यदि कूद नहीं सकते तो बैठे रहना है, देखते रहना है।

यह अपना जो विज्ञान है न, उसमें जो कुछ भी होता है वह सब प्रतिक्रमण है। पहले जो कुछ भी राग-द्वेष किए हों, कुछ देखा हो और हमें अच्छा नहीं लगे, बोरियत लगती हो तो भीतर वे परमाणु भर गए हैं, इसलिए उन्हें ऐसा 'देखने' से वे सब चले जाते हैं। सभी अभिप्राय खत्म हो जाने चाहिए कि यह गलत है और यह अच्छा है।

अर्थात् आपका जो भी उदय आए, 'चंदूभाई' उसमें एकाकार हो जाए उसे 'आपको' देखते रहना है, दोनों को अपने-अपने काम में रहना है।

वह चिढ़ बनाती है असहज

मुंबई में हमें पूछते हैं कि आपके यहाँ आकर भी ताली बजानी पड़ती है, उसका क्या अर्थ है? मैंने कहा, इससे पहले अनंत जन्मों में जो चिढ़ की है न, उस चिढ़ को निकालने के लिए ये सब करते हैं। चिढ़ को निकालना तो पड़ेगा न? चिढ़ को लेकर वहाँ जा सकते हैं क्या? इसलिए वे ताली बजाते हैं न! वहाँ पर वह चिढ़ की है, उसे निकालने के लिए यह सब है। यदि आप खुद करोगे तो वह निकल जाएगी। वर्ना, ऐसा काम करने से मुझे क्या फायदा? मैं तो ज्ञानीपुरुष और ज्ञान में ऐसा सब नहीं होता न! क्योंकि यह अक्रम विज्ञान है, यह सब तो खाली कर देना है। क्रमिक में ऐसा नहीं चलता। क्रमिक में तो साथ में रखकर मार भी खानी पड़ती है। यहाँ पर तो खाली ही करना है। शुद्धात्मा बनने के बाद फिर रहा क्या? इस तरह से क्रमिक में शुद्धात्मा नहीं बन सकते और जब शुद्धात्मा बन जाते हैं तो उसी जन्म में मोक्ष में चले जाते हैं। जबकि आप शुद्धात्मा बन गए तो व्यापारी व्यापार कर सकता है, ऐसा अपना अक्रम है। देखो न, ये भाई आराम से करते हैं न! आपको समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : हाँ, मुझे समझ में आया।

दादाश्री : अब, आप इस तरह सोचना।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ज़रूर।

उन रोगों को निकालने की कला

दादाश्री : इस अक्रम विज्ञान में लॉ है ही नहीं, यह ताली बजानी। वैसे ताली भी नहीं बजानी है लेकिन जिनमें एटिकेट है, उनका रोग निकालने के लिए है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, उसके बाद बहुत सहज रूप से बोला जाता है, अब तो होता है। अब तो चैन नहीं पड़ता।

दादाश्री : उस एटिकेट के रोग को निकालने के लिए ही यह

है। एटिकेट जाए बगैर, धर्म कभी भी परिणाम नहीं पाता। जो एटिकेट के बाहर रहता है वहाँ पर धर्म परिणाम पाता है। इसलिए ये भी ऐसा कहते थे, यहाँ तालियाँ बजानी है? तब मैंने कहा, रोग निकालने के लिए है यह।

किसी भी व्यक्ति ने खुद की बुद्धि से एटिकेट नहीं सीखा है। बुद्धि रहती ही नहीं न! ये एटिकेट तो सभी नकल हैं। इसीलिए यह रोग घुस गया है। इस रोग को निकालने के लिए मैंने यह किया।

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है दादा। हम जो टाई पहनते हैं उसे समझकर कभी भी नहीं पहनते। सभी पहनते हैं, इसलिए हम पहनते हैं।

दादाश्री : सब ने देखकर ही ये एटिकेट सीखे हैं। हिन्दुस्तान में सब ने जो एटिकेट सीखे हैं न, और जब तक वे एटिकेट हैं तब तक धर्म जैसी चीज़ ही नहीं है। जहाँ कुछ भी एटिकेट है वहाँ धर्म जैसी चीज़ ही नहीं। जहाँ सहजता है वहाँ धर्म है।

हल लाओ ऐसे

अपने सत्संग में ये जो बोलते हैं, करते हैं, वे सब बाहर से आए हुए लोग, 'उनके *लक्ष* में ऐसा अलग ही रहता है कि ज्ञान वाले कैसे रहते हैं' जब वे ऐसा देखते हैं तब उनके मन में ऐसा होता है कि ज्ञान किसे कहा जाता है? लेकिन उन्हें यह समझ में नहीं आता कि ये लोग ज्ञान ग्रहण कर रहे हैं और अज्ञान को छोड़ रहे हैं। क्योंकि हम ऐसे नहीं थे कि कभी ताली बजाए लेकिन वह मान्यता गलत है ऐसा माना था, उसके प्रति तिरस्कार रहता था। अब, उस मान्यता का हम समभाव से *निकाल* (निपटारा) कर देते हैं। हम ताली बजाएँगे तो छूट जाएँगे।

यदि तिरस्कार रहता हो तो निकाल देना और राग आता हो तो उसे भी निकाल देना। दोनों को यहाँ पर निकाल देना है। लोगों को इस पर तिरस्कार रहता है या नहीं? तो क्या उस तिरस्कार को साथ में लेकर जाना है? इसलिए यहाँ पर ही निकाल देना है, प्लस-माइनस कर देना है।

वर्ना, हमारे यहाँ बाहर वाले तो ऐसा ही कहते हैं कि वापस यह सब क्या कर रहे हो? इतने पढ़े-लिखे होकर दादाजी के पास क्या रंग लगा है? आप यह ग्रहण किया हुआ माल रोंग बिलीफें, उनका *निकाल* कर रहे हों। उन बेचारों को पता ही नहीं है।

हम सभी पर्यायों को समझते हैं कि ऐसा पर्याय होना चाहिए लेकिन किसके लिए? क्रमिक मार्ग से आए हुए लोगों के लिए नहीं होता क्योंकि वे सब *निकाल* करके आए हुए हैं। और यहाँ तो *निकाल* किए बगैर का माल इसलिए इस प्रकार से *निकाल* करने से सहज होता है। किसी भी प्रकार से देह को सहज करना है।

ताली नहीं बजानी वह एक प्रकार की रोंग बिलीफ है। ताली बजानी वह भी एक रोंग बिलीफ है। ताली नहीं बजानी वह एक प्रकार की बिलीफ अहंकार को बढ़ाने वाली है और यह अहंकार को खत्म करने वाली है और आप उसके कर्ता नहीं हो। यह तो चंदूभाई करते हैं, आप कहाँ करते हो?

अर्थात् अपने यहाँ की सारी क्रियाएँ रोंग बिलीफ छोड़ने के लिए हैं। बहुत सी बिलीफें तो मैंने फ्रेक्चर कर दी हैं, लेकिन अभी भी कितनी ही अंदर पड़ी हैं लेकिन सहज रूप से निकल जाएगी। यहाँ पर कोई आपत्ति भी नहीं उठाता न! खुद का स्टेज (स्टेटस, प्रतिष्ठा) ही भूल जाते हैं। पहले तो मुझ से ऐसा नहीं होगा, नहीं? लेकिन फिर भी आपको कहाँ करना है? आपके लिए करने का रखा हो तो बताओ। आपको तो चंदूभाई क्या करते हैं उसे देखते रहना है, कि 'ओहोहो, चंदूभाई ने कैसी ताली बजाई, मोक्ष जाने के लिए। आपको भी छूटना है और उन्हें भी छुड़वाना है।'

वर्ना, चंदूभाई को ताली बजानी अच्छी लगती होगी? यह तो मैं (ताली बजाकर) आपको सिखाता हूँ। बाकी, अब मुझे इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। आपको सिखाकर निबेड़ा ला देता हूँ। मुझे इन क्रियाओं को करने की क्या ज़रूरत है? यह तो निबेड़ा ला देना है। यह कोई कॉलेज या स्कूल नहीं है।

यह तो, किसी भी तरह से हल लाना है। यदि इसमें बुद्धि का उपयोग किया न तो बुद्धि पूरी रात सोने नहीं देंगी और बुद्धि से समझ सकते हैं? लेकिन यदि आपकी समझ में फर्क आ जाएगा तो पूरी रात नींद में भी लगेगा कि दादा, ऐसा क्यों करवाते हैं? अरे, लेकिन आपको कहाँ करना है? जिसने तिरस्कार किया, उसे करना है। उसे प्लस-माइनस कर ही लेना चाहिए न?

प्रकृति सहज होने के लिए...

अर्थात् यह सब सहज, यहाँ तो गरबा वगैरह सब घूमते हैं, यहाँ सब चलता है। यहाँ महादेव जी के दर्शन करते हैं, माता जी के दर्शन करते हैं, सभी के दर्शन करते हैं लेकिन सब सहज परिणाम हैं।

ऐसा है न, इन माता जी की भक्ति करने से प्रकृति सहज होती है। अंबा माता, दुर्गा देवी, सभी देवियाँ प्रकृति भाव को सूचित करती है। वे सहजता को सूचित करती है। अगर प्रकृति सहज हो जाए तो आत्मा सहज हो जाता है, अथवा आत्मा सहज हो जाए तो प्रकृति सहज हो जाती है। 'हमें' माता जी की भक्ति खुद की प्रकृति के पास करवानी है। 'हमें' आत्मभाव से नहीं करनी है, 'चंदूलाल' के पास से देवी जी की भक्ति करवानी है और तभी प्रकृति सहज होती जाएगी।

यहाँ हिन्दुस्तान में तो लोगों ने माता जी के अलग-अलग नाम रखे हैं। यह साइन्स कितना बड़ा होगा! कितनी सारी खोजबीन के बाद अंबा माता, सरस्वती देवी, लक्ष्मी देवी की खोज हुई होगी! जब यह सब किया तब साइन्स कितना ऊँचा रहा होगा! वह सब अभी खत्म हो गया इसलिए माता जी के दर्शन करना भी नहीं आता!

माता जी वे आद्यशक्ति हैं! वे प्राकृत शक्ति देती हैं। माता जी की भक्ति करने से प्राकृत शक्ति उत्पन्न होती है। अंबा माँ तो संसार के विघ्नों को दूर कर देती है लेकिन मुक्ति तो ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होती है। यदि दर्शन करना आ जाए तो चारों माता जी प्रत्यक्ष हाज़िर

ही हैं, जैसे अंबा माता, बहुचरा माता, कालीका माता, भद्रकाली माता। माता जी पाप नहीं धोती लेकिन प्राकृत शक्ति देती हैं।

अंबा माता जी हमारा कितना रक्षण करती हैं! हमारे आसपास सभी भगवान हाज़िर ही रहते हैं। हम भगवान से पूछे बगैर, उनकी आज्ञा के बगैर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ते। सभी भगवान की कृपा हम पर और हमारे महात्माओं पर बरसती ही रहती है!

अंबा माता जी अर्थात् सहज प्रकृति। हर एक देवी के नियम रहते हैं। उन नियमों का पालन करने से देवियाँ खुश रहती हैं। हम अंबे माँ के इकलौते लाल हैं। यदि आप माता जी के पास हमारी चिठ्ठी लेकर जाओगे तो वे स्वीकार करेंगी। जैसे कि यह आपका बेटा है और नौकर है लेकिन यदि नौकर आपके नियम में ही रहता है तो आपको नौकर प्यारा लगेगा या नहीं? लगेगा ही। हमने कभी भी अंबे माँ के, लक्ष्मी जी के और सरस्वती देवी जी के नियम नहीं तोड़े। निरंतर उनके नियम में ही रहते हैं इसीलिए वे तीनों देवियाँ निरंतर हम पर प्रसन्न रहती हैं। यदि आप भी उन्हें प्रसन्न रखना चाहते हो तो आपको उनके नियम का पालन करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अंबा माता के क्या नियम हैं? हमारे घर सभी अंबे माँ की भक्ति करते हैं लेकिन उनके क्या नियम हैं, उन्हें हम नहीं जानते।

दादाश्री : अंबा माता जी अर्थात् क्या? वे प्रकृति की सहजता को सूचित करती है। अगर सहजता टूट गई तो अंबा जी आप पर प्रसन्न ही कैसे होंगी? इन अंबा जी का तो क्या कहना? वे तो माता जी हैं, माँ है। बंगाल में वे दुर्गा कहलाती हैं। वे ही ये अंबा जी हैं। सभी देवियों के अलग-अलग नाम रखे हैं लेकिन ज़बरदस्त देवी है! पूरी प्रकृति है। पूरी प्रकृति का जो भाग है तो वे माता जी है। यदि प्रकृति सहज हो गई तो आत्मा सहज हो ही जाता है। आत्मा और प्रकृति, उन दोनों में से एक सहज की तरफ चला तो दोनों सहज हो जाएँगे!

❖❖❖❖❖

[8]

अंत में प्राप्त करना है अप्रयत्न दशा

बाधक अहंकार, नहीं कि संसार

प्रश्नकर्ता : इस संसार की जो जवाबदारियाँ अदा करनी हैं, उनमें सहज कैसे रह सकते हैं?

दादाश्री : नहीं रह सकते। वैसा सहज योग तो कोई अरबों में एकाध व्यक्ति ही कर सकता है, किसी समय! सहज रूप से तो, ये सभी बातें करने जैसी नहीं हैं। उसके बजाय कोई दीपक प्रकट हुआ हो, उन ज्ञानी से कहेंगे, 'साहब, मेरा दीपक प्रकट कर दो।' तो वे प्रकट कर देंगे। झंझट खत्म हो गई। हमें दीपक प्रकट करने से ही मतलब है न?

ज्ञानमार्ग पर सहज रहा जा सकता है। हम तो निरंतर सहज ही रहते हैं, निरंतर सहज! फिर संसार की जवाबदारियाँ बाधक नहीं होती क्योंकि संसार ऐसी चीज़ है कि आसानी से चले। जैसे कि खाने के बाद अंदर सहज रूप से चलता है उसके बजाय बाहर ज़्यादा सहज रूप से चलता है। देह तो अपना काम कर ही लेगी। हमें देखते रहना है। वह व्यवस्थित के ताबे में है, अपने ताबे में नहीं है। वह खाएगी-पीएगी, घूमना-फिरना सबकुछ करेगी। व्यवस्थित का अर्थ क्या है कि सहज भाव से जो भी हो उसे किए जाओ।

देह रूपी कारखाने को चलाता है कौन?

इस एलेम्बिक के कारखाने में कितने सारे लोग काम करते हैं, तब जाकर कैमिकल बनते हैं और वह भी एक ही कारखाना

है, जबकि यह देह तो अनेक कारखानों की बनी हुई है, लाखों एलेम्बिक के कारखानों की बनी हुई है। वह अपने आप चलती है। भाई, रात को हाँडवा (गुजराती व्यंजन) खाकर सो गया, उसमें भीतर कितना पाचकरस गिरा, कितना पित्त गिरा, कितना बाईल गिरा, उसकी जाँच करने जाता है क्या तू? वहाँ तू कितना एलर्ट रहता है, भाई? वह तो, सुबह अपने आप ही सभी क्रियाएँ होकर, पानी, पानी की जगह से और संडास, संडास की जगह से अलग होकर निकल जाता है और सारा सत्व (सार) खून में समा जाता है। तो क्या वह सब तू चलाने गया था? अरे भाई, जब यह अंदर का अपने आप चलता है तो क्या बाहर का नहीं चलेगा? 'तू करता है!' ऐसा किसलिए मानता है? वह तो चलता रहेगा। रात को नींद में शरीर सहज रहता है। ये भाई तो असहज! दिन में तो लोग ऐसा कहते हैं कि मैं श्वास लेता हूँ, थोड़ी श्वास लेता हूँ, ऊँची श्वास लेता हूँ और नीची भी लेता हूँ तो भाई, रात को कौन श्वास लेता है? रात में जो श्वासोच्छ्वास चलते हैं वे नॉर्मल हैं। उनसे ही सब अच्छे से पाचन होता है।

सहज भाव में बुद्धि का उपयोग नहीं होता। सुबह बिस्तर से उठे तो ब्रश करते हो, चाय पीते हो, नाश्ता करते हो, वह सब सहज भाव से होता ही रहता है। उसमें मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार का उपयोग नहीं करना पड़ता। जिसमें इन सभी का उपयोग होता है, उसे असहज कहते हैं, विकल्पी भाव कहते हैं।

अगर आपको कोई चीज़ चाहिए और सामने वाला व्यक्ति आकर कहे कि, 'यह चीज़ लो।' तो वह सहज भाव से मिला कहलाएगा।

आपने कुछ सोचा भी नहीं हो। आपको ज़रूरत हो लेकिन उसके पास से लेने का आपका इरादा न हो। फिर भी आसानी से मिल जाता है, लोग ऐसा नहीं बताते?

सहज अर्थात् अप्रयत्न दशा। किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं।

क्या करना चाहिए और क्या नहीं?

सबकुछ सहज रूप से चल रहा है जब ऐसा भान होगा तब आत्मज्ञान होगा। अब, सहज अर्थात् क्या? जो बगैर प्रयत्न के चल रहा है उसे लोग कहते हैं, 'मैंने ऐसा किया और वैसा सब किया।' यह सब किस तरह से समझ में आएगा? और किसी ने बनाया नहीं। किसी ने किया नहीं, करने जैसा है भी नहीं। यह तो, ओन्ली साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स हैं।

प्रश्नकर्ता : तो इस अक्रम ज्ञान को प्राप्त करने के लिए सभी को क्या प्रयत्न करने चाहिए?

दादाश्री : प्रयत्न कोई करता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर, आपके पास आने की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : मेरा पड़ोसी भी कोई प्रयत्न नहीं करता और मैं भी पड़ोसी को नहीं कहता कि अक्रम ज्ञान ले लो। जो यहाँ पर आए, मुझसे मिले, उनसे मैं बात करता हूँ, वर्ना, नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : करने की ज़रूरत भी क्या है?

दादाश्री : नहीं, सहज भाव से जो हो जाए, वह अच्छा है।

प्रश्नकर्ता : सहज भाव से जो होना है वह तो होता ही रहता है।

दादाश्री : हाँ, उसके जैसा ही। हमें और कोई दखल नहीं करना है। अभी तो, आपके साथ सहज भाव से ही ये सारी झंझटें हैं। इसमें नया कोई दखल नहीं है। सिर्फ, आप सहज भाव में नहीं हो। हम तो सहज भाव में ही रहते हैं। अब, आप सहज भाव में आने का प्रयत्न कर रहे हो।

ये फॉरेन वाले, वे तो बेचारे सहज ही हैं। ये गाय-भैंसें भी सहज हैं।

प्रश्नकर्ता : ऐसा तो मुझे बहुत बार लगता है, ये जो गाय-भैंसें

और ये सभी जो जानवर हैं न, इनमें राग या द्वेष नहीं हैं। और भी... इसलिए ऐसा लगता है कि मनुष्य के बजाय तो ये लोग ज़्यादा सुखी हैं।

दादाश्री : क्योंकि वे रक्षित हैं और वे तो आश्रित हैं और कोई आश्रित दु:खी नहीं रहता। ये तो सिर्फ हिन्दुस्तान के लोग ही निराश्रित हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मनुष्य देह को उनसे ज़्यादा अच्छा कैसे मानेंगे?

दादाश्री : यह मोक्ष के लायक हो गया है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष क्या है?

दादाश्री : मोक्ष अर्थात् खुद की अंतिम, स्वाभाविक दशा।

प्रश्नकर्ता : यदि वह भी सहज रूप से ही आने वाली है तो मनुष्य को प्रयत्न भी क्यों करना चाहिए?

दादाश्री : वह सहज रूप से ही आ रही है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर प्रयत्न करने की कोई ज़रूरत ही नहीं न?

दादाश्री : प्रयत्न कोई करता ही नहीं है। ये जो प्रयत्न करते हैं, वे तो खुद अहंकार करते हैं। 'मैंने यह प्रयत्न किया।'

प्रश्नकर्ता : मैं यहाँ पर आया तो मैं ऐसा ही मानता हूँ कि मैं प्रयत्न करके आया।

दादाश्री : वह तो, आप ऐसा ही मानते हो कि मैं यह कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि आप सहज रूप से आए हो और आपका इगोइज़म आपको ऐसा दिखाता है कि मैं था तो हुआ, हम मिले, ऐसा हुआ, वैसा हुआ और आप एडजस्टमेन्ट ले लेते हो। बस, उतना ही हुआ। सभी क्रिया स्वाभाविक हो रही हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर करने जैसा कुछ रहता ही नहीं?

दादाश्री : नहीं करने जैसा भी नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : नहीं करने जैसा तो करते ही नहीं।

दादाश्री : करने जैसा भी नहीं रहा और नहीं करने जैसा भी नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : तो क्या करना है?

दादाश्री : संसार, जानने जैसा है।

प्रश्नकर्ता : कैसे जानना है?

दादाश्री : यह अभी क्या होता है, उसे देखते रहना है और जानते रहना है, बस।

व्यवस्थित को समझने से प्रकट होती है सहजता

अब, आप आत्मा ही बन गए तो फिर रहा क्या?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जब आत्मा शुद्ध हो जाता है तो उसकी दशा कैसी रहती होगी? तो कहा कि पूरी अप्रयत्न दशा उत्पन्न हो जाती है। चप्पल पहनने का भी खुद का प्रयत्न नहीं होता।

दादाश्री : अभी तो यह अप्रयत्न दशा ही है। प्रयत्न तो जब अहंकार रहता है तब कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि गाड़ी से जाने के लिए जब रेलवे स्टेशन गए हो तब स्टेशन पर जाकर देखते हैं कि गाड़ी आ रही है या नहीं? यों सिर झुकाकर नहीं देखते।

दादाश्री : वैसे देखने में क्या हर्ज है? उसके बाद खुद को पता चलता है कि यह थोड़ी गलती हो गई। यानी सहज बनना है ऐसा भाव रखना है। अपनी दृष्टि कैसी रखनी है? सहज। उस समय क्या हो रहा है, उसे देखना है। ध्येय क्या रखना है कि दादाजी की सेवा करनी है और भाव सहज रखना है। दादाजी की सेवा मिलनी, वह तो बहुत बड़ी चीज़ है न? वह तो जब बहुत ज़्यादा पुण्य हो तब मिलती है, वर्ना नहीं मिलती न? ऐसे तो हाथ ही नहीं लगा सकते न? एक बार हाथ लगाने मिला तो भी बहुत बड़ा पुण्य कहलाएगा

और यदि मिल गया तो मन में समझना कि बहुत दिनों बाद प्राप्त हुआ। उतना भी क्या कम है? बाकी, किसी भी तरह से शुद्ध उपयोग में रहना है।

प्रश्नकर्ता : सहज तो तभी होते हैं न, जब संपूर्ण रूप से विज्ञान अंदर खुला हो जाता है तभी सहज हो सकते हैं न?

दादाश्री : जब 'व्यवस्थित' संपूर्ण रूप से समझ में आता है तब संपूर्ण रूप से सहज होता है। अब तो वह अपने आप होता ही रहता है। उसका ऐसा बहुत ज़्यादा नहीं रखना है या उसके लिए राह देखते नहीं बैठना है। यदि राह देखेंगे तो उसका कोई पार ही नहीं आएगा लेकिन यदि व्यवस्थित समझ में आ जाए तो तुरंत सहज हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : सहज होने के लिए व्यवस्थित पूरी तरह से समझ में आ जाना चाहिए न?

दादाश्री : यदि व्यवस्थित पूरी तरह से समझ में आ जाएगा तो पूरा सहज हो जाएगा। बाकी, व्यवस्थित जितना समझ में आता जाएगा उतना सहज होता जाएगा तो फिर घबराहट ही नहीं होगी। यदि व्यवस्थित समझ में आ जाए तो इस दुनिया में झंझट है ही नहीं। व्यवस्थित जितना समझ में आता जाता है उतना केवलज्ञान खुला होता जाता है। उतना सहज होता जाता है।

प्रश्नकर्ता : जब व्यवस्थित समझ में नहीं आता तभी उपयोग के बाहर जाता है न?

दादाश्री : हाँ, तभी जाता है। वर्ना, उपयोग के बाहर जाएगा ही नहीं न, और यदि जाएगा तो असहज हो जाएगा। व्यवस्थित जितना समझ में आता जाएगा उतना सहज होता जाएगा। जैसे-जैसे व्यवस्थित समझ में आता जाता है, उसकी परतें हटती जाती हैं वैसे-वैसे सहज होता जाता है। निर्विकल्प तो हुए हैं लेकिन सहज नहीं हुए। निर्विकल्प तो जब ज्ञान दिया तभी से हुए हैं। जितनी सहज अवस्था उत्पन्न होती है न, वैसे-वैसे वाणी, वर्तन सभी बदलते जाते हैं, वीतरागता आती जाती है।

कर्तापना छूटने पर खिलता है दर्शन

हमने जो व्यवस्थित शक्ति बताई है न, तो इस शरीर के सभी अवयव उसके अधीन हैं। अर्थात् हमें सहज भाव में 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा मानकर व्यवस्थित को सौंप देना है और दखलंदाज़ी नहीं करनी है। 'काम पर नहीं जाएँगे तो क्या बिगड़ जाएगा?' ऐसा कुछ नहीं बोल सकते। वह दखलंदाज़ी कहलाती है। काम पर जाना अपनी सत्ता में नहीं है तो फिर ऐसा कैसे बोल सकते हैं? वह दखलंदाज़ी करता है न, उसके कारण बात समझ में नहीं आती। वर्ना, बहुत ही सरलता से काम पूरा हो जाता है। संसार तो ऐसा है कि बहुत अच्छी तरह से चलता है।

अब तो ऐसा है कि यदि इस व्यवस्थित को यथार्थ रूप से समझ लेंगे न तो ऑफिस में आठ घंटे का काम एक घंटे में हो जाएगा। एक ही घंटे में पूरा हो जाए इतना ऊँचा दर्शन प्राप्त होता है।

ऐसे दिखाई दिया व्यवस्थित

प्रश्नकर्ता : किसी भी कार्य को होने में द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव, चार चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है तो वे क्या हैं? उदाहरण देकर समझाइए।

दादाश्री : मुझे अपने घर के कमरे में बैंच पर बैठे-बैठे दो-तीन दिनों से ऐसे विचार आते रहते हैं कि मुझे बाल कटवाने हैं। विचार आने के बाद तुरंत काम नहीं होता। वर्ना, जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं वैसे-वैसे अंदर बोदरेशन बढ़ने लगता है। बोरियत होती है। अर्थात् पहले मुझे भाव हुआ। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में से पहले भाव हुआ। फिर एक दिन तय किया, आज तो जाना ही है। घर में कह दिया कि कोई भी आए तो बैठाकर रखना, मैं जाकर आता हूँ। अब वहाँ पर लिखा हो, आज मंगलवार है इसलिए बंद है। किस कारण से? क्षेत्र नहीं मिला। दुकान जाकर वापस आया। जिस दिन जाकर वापस आते हैं न, उसके बाद पूरे दिन यही याद आता रहता है कि चलो जाना है, जाना है। फिर दूसरे दिन गया,

वहाँ उस बाल काटने वाले के लड़के ने दुकान खोली थी। वह कहता है कि 'चाचा आओ, बैठो।' मैंने पूछा, 'बाल काटने वाला कहाँ गया?' तब कहने लगा, 'वह तो अभी गया है चाय पीने के लिए। वह दस मिनट में आ जाएगा।' अर्थात् उसका दंड तो अगले दिन मिला तो समझ गया कि पंद्रह मिनट में कुछ बिगड़ने वाला नहीं है। अब भाव हुआ, क्षेत्र मिला, द्रव्य नहीं मिला। यदि द्रव्य मिले तो काल मिलता है। फिर वह आया और काल के मिलते ही कट, कट, कट करके बाल काट दिए।

इसलिए मैं बड़ौदा में क्या करता था? जब ज्ञान नहीं था तब भी ऐसा ही करता था। घर से वहाँ जाता, यदि वहाँ दुकान बंद हो तो हम जान जाते कि आज संयोग इकट्ठे नहीं हुए। हम ऐसा सब हिसाब निकाल लेते थे। हम सब खोज कर लेते थे कि किस संयोग की कमी है?

प्रश्नकर्ता : दूसरे दिन जाओ तो, पाँच-छः लोग बाल कटवाने के लिए बैठे हो और अपने पास टाइम नहीं हो कि अभी तो पाव घंटे में मुझे वापस जाना है तो फिर वापस आ जाना पड़ता है।

दादाश्री : हाँ, ऐसा होता है। इसलिए हमें तो ऐसे टाइम और सब देखते-देखते साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स सब समझ में आया कि यह संसार किस तरह से चलता है?

हमें ऐसा नहीं रहता कि आज ऐसा ही करना है। मिलता है या नहीं उतना ही देखते हैं और अगर अपने आप सहज ही मिल जाता हो तो, वर्ना कुछ नहीं। लोग इस तरह से नहीं देखते, नहीं? तो लोग किस तरह से देखते हैं? 'मैं वहाँ गया और वहाँ वह नहीं मिला, मेरा काम नहीं हुआ' ऐसा कहेगा।

वैल्यूएशन (कीमत) किसकी?

कितनी ही हितकारी चीज़ें होती हैं, यदि वह अपने आप सहज रूप से प्राप्त होती हो तो अच्छी बात है। यदि हो सके तो होने देना

और नहीं हो सके तो कुछ नहीं, एकदम सहज रहना। दखल नहीं करना। जो चीज़ सहज नहीं रहने दे, उसे दखल कहते हैं।

दखल करने से कितने ही जन्म बढ़ जाएँगे। इसकी वैल्यूएशन भी नहीं करना और डिवैल्यूएशन भी नहीं होने देना। व्यवहार की वैल्यूएशन नहीं करना और आत्मा की डिवैल्यूएशन न हो ऐसा देखकर व्यवहार करना। व्यवहार बगैर चलेगा ही नहीं, ऐसा नहीं बोलना। यदि कभी बोलना पड़े तो निश्चय बगैर नहीं चलेगा, ऐसा बोलना। इस विवेक को समझ लेना है।

ज्ञानी हमेशा अप्रयत्न दशा में

कौन ज्ञानीपुरुष कहलाते हैं? जिन्हें निरंतर अप्रयत्न दशा बरतती है।

अब, जगत् प्रयत्न में है लेकिन आप प्रयत्न में नहीं हो, आप यत्न में हो। हाँ, यह दखल हुआ है, उसे सही-गलत मान बैठे हो। अरे भाई, लेकिन आप अपनी जगह पर बैठे रहो न, आगे-पीछे किसलिए होते हो? वह सही-गलत तो *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) का होता है, उसमें कभी भी *पुद्गल* की वंशावली नहीं गई। *पुद्गल* की वंशावली कभी नहीं जाती। आपको उसकी चिंता नहीं करनी है। उनके मन में ऐसा रहता है कि *पुद्गल* की वंशावली चली जाएगी तो क्या होगा? अच्छे की वंशावली चली जाएगी और गलत की बढ़ जाएगी। इस *पुद्गल* की वंशावली कभी भी नहीं गई। ज्ञाता-दृष्टा, अक्रिय, ऐसा आत्मा है। यत्न भी नहीं होता और प्रयत्न भी नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : आपको तो आत्मा अलग ही बरतता है अर्थात् हर एक प्रदेश में सभी जगह वह अलग ही बरतता है?

दादाश्री : हाँ, सभी जगह। है ही अलग, आपमें भी अलग है।

प्रश्नकर्ता : है तो अलग ही, लेकिन यह बरतने की बात है न?

दादाश्री : बरतना अर्थात् खुद का ज्ञान संपूर्ण रूप से है। जितना अज्ञान उतना नहीं बरतता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसका अर्थ ऐसा हुआ कि उसी अनुसार पूरे शरीर में बरतता है?

दादाश्री : हाँ, उसी अनुसार बरतता है। जितना बरतेगा उतना सहज। ज्ञान होने के बाद देह सहज होती है क्योंकि जहाँ क्रोध-मान-माया-लोभ खत्म हो गए वहाँ सहजता उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : सहज होना वही सब से बड़ी बात है।

दादाश्री : बड़ी बात ही नहीं, अंतिम बात है! अंत में तो सहज ही होना पड़ेगा न? अंत में सहज हुए बगैर नहीं चलेगा।

सहज पर से साहजिकता। सहज अर्थात् अप्रयत्न दशा। अप्रयत्न दशा से चाय आए तो हर्ज नहीं। अप्रयत्न दशा से खाना आए तो हर्ज नहीं।

प्रश्नकर्ता : यदि खाना याद आए, चाय याद आए, उन सब के विचार आया करे तो वह सहजता टूट गई कही जाएगी?

दादाश्री : सहजता टूट ही जाएगी न! सहजता के टूटने से आत्मा कुछ नहीं खाता, वह तो खाने वाला खाता है। अंत में देह को सहज करना है। आहारी हुआ लेकिन सहज करना है। सहज ही होने की ज़रूरत है। सहज होने में टाइम लगेगा लेकिन सहज अर्थात् पूर्णता।

सहज योग प्राप्त करने का तरीका

प्रश्नकर्ता : देह को सहज होने के लिए कुछ साधन तो चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, साधन के बिना सहज कैसे हो पाओगे? और फिर ज्ञानीपुरुष के दिए हुए साधन चाहिए, कैसे?

प्रश्नकर्ता : कोई भी साधन नहीं चलेगा? किसी का भी दिया हुआ नहीं चलेगा?

दादाश्री : यदि सहज योग प्राप्त करना है, जिसे अज्ञान दशा

है, भ्रांति की दशा है, उसमें भी सहज रूप से रहने की शुरुआत करेगा तब सहज मार्ग प्राप्त होगा। सुबह कोई चाय दे जाए तो पी लेना, नहीं दी तो कुछ भी नहीं। खाने का दे तो खा लेना, वर्ना, माँगकर नहीं खाना। वहाँ ऐसे-ऐसे इशारा करके भी नहीं खा सकते। इस काल में वह सहज योग बहुत कठिन है। सत्युग में सहज योग अच्छा था। अभी तो माँगे बगैर लोग देते ही नहीं न! वह सहज योग वाला तो मारा जाएगा बेचारा, यह कठिन चीज़ है।

यदि यहाँ सो जाओ ऐसा कहे तो सो जाना। माँगने का मौका नहीं आना चाहिए। सहज प्राप्त संयोगों में ही रहना पड़े तो वह सहज योग है। बाकी, दूसरे सभी तो लोगों ने कल्पना करके निर्मित किए हुए धर्म हैं। सहज योग होता ही नहीं। वह कोई लड्डु खाने जैसा खेल नहीं है। सभी ने कल्पनाएँ निर्मित की हैं।

यदि एक महीने तक सहज रहेंगे तो फिर और कोई सहज योग करने जैसा ही नहीं रहेगा। अगर एक ही महीने तक सहज रहेगा तो बहुत हो गया।

आदर-अनादर नहीं, वह सहज

प्रश्नकर्ता : अगर एक दिन सहज रूप से निकालना हो तो कैसे निकालेंगे? उसका वर्तन कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : सहज प्राप्त संयोगों, बाहर और अंदर के जो मन के, बुद्धि के संयोगों से पर होता है, तब सहज प्राप्त होता है। अंदर जो मन वगैरह सभी चीख-पुकार करते हैं, उन सभी से अलग रहकर खुद यह सब देखे-जानें और बाहर सहज प्राप्त संयोग। यदि दो बजे तक खाना नहीं मिला तो कुछ बोलना नहीं। तीन बजे, साढ़े तीन बजे मिले तो उस समय, जब मिले तब...

सहज रूप से जो भी मिले चाहे वह खीर-पूरी और मालपुआ हो, उसे खा लेना। जितने खा सको उतने। उसके बाद यदि सब्ज़ी-रोटी मिली हो तो भी खा लेना। मालपुआ और खीर का आदर नहीं

करना और रोटी का अनादर नहीं करना। अब, एक का आदर करता है और दूसरे का अनादर करता है, काम ही क्या है?

प्रश्नकर्ता : दादा, सहज होना, सहज होना, वह सब पढ़ा तो बहुत था लेकिन सहज कैसे हो सकते हैं, वह आपने बताया कि यदि खीर मिले तो खाना और रोटी मिले तो भी खाना, वह आपकी बात पर से फिर वह चीज़ पता चली कि सहज किस तरह से होना है, वह समझ में आ जाता है।

दादाश्री : एक का अनादर नहीं और दूसरे का आदर नहीं, वह सहज। जो सामने से आ मिला उसे सहज कहते हैं। फिर भले ही ऐसा कहे कि भाई, तला हुआ है, तला हुआ है, नुकसान करेगा न? भाई, तला हुआ तो विकृत बुद्धि वालों को नुकसान करता है। सहज को कुछ नुकसान नहीं करता। सामने से आ मिला उसे खाओ। सामने से आ मिला दुःख भुगत लो, सामने से आ मिला सुख भी भुगत लो। ज्ञानी को तो सुख-दुःख होता ही नहीं न! लेकिन सामने से आया हुआ।

और यदि कड़वा लगे तो रहने देना है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, निकाल देना है।

दादाश्री : इसलिए यदि 'मुँह बिगड़ता है' तो होने देना है। हमने दखल नहीं की, उसे सहज कहेंगे। यह पूरा मार्ग सहज का है।

प्रश्नकर्ता : 'सहज मिला सो दूध बराबर', ऐसा कहते हैं तो यदि सहज की प्राप्ति प्रारब्ध के अधीन है, तो पुरुषार्थ में क्या अंतर है?

दादाश्री : सहज की प्राप्ति प्रारब्ध के अधीन नहीं है, वह ज्ञान के अधीन है। अज्ञान होने से असहज होता रहता है और यदि ज्ञान हो तो सहज होता रहेगा। अज्ञान से ही तो सारा जगत् असहज है न?

यह तो अक्रम विज्ञान है, क्रम वगैरह कुछ नहीं, कुछ करना

ही नहीं। जहाँ करना पड़े वहाँ आत्मा नहीं होता। जहाँ करना पड़े वहाँ संसार और जहाँ सहज हो वहाँ आत्मा!

लगाम, कर्तापना की

प्रश्नकर्ता : अब, हमें कितने बजे उठना चाहिए? सुबह के कार्यक्रम किस तरह से करने चाहिए और जीवन किस तरह से जीना चाहिए? ज़रा समझाइए।

दादाश्री : हाँ, समझाते हैं। ऐसा है कि एक दिन के लिए लगाम छोड़ दो, शनिवार की रात से या रविवार के दिन सुबह से लगाम छोड़ देनी है कि अब, मुझे कुछ भी नहीं चलाना है। फिर देखो, चलता है या आपको चलाना पड़ता है? अभी तक तो लगाम पकड़कर रखी थी इसलिए आपको ऐसा लगता था कि मैं ही चलाता हूँ लेकिन जब लगाम छोड़ देते हो तब चलता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : चलता है।

दादाश्री : सुबह चाय-नाश्ता नहीं मिलता? मुझे लगता है, सुबह उठते ही नहीं। नहीं उठते?

प्रश्नकर्ता : उठ जाते हैं।

दादाश्री : तूने यह प्रयोग करके नहीं देखा? एक दिन के लिए लगाम छोड़ दो न, तब दूसरे दिन पता चलेगा कि यह तो बल्कि अच्छी तरह से चला। लगाम पकड़ने से ही बिगड़ता है।

सहज होने के लिए लगाम छोड़ दो

प्रश्नकर्ता : लगाम छोड़ देनी है वह ठीक से समझ में नहीं आया। लगाम छोड़ देनी अर्थात् क्या?

दादाश्र : जैसे अपने घर के बैल हों, जिन्होंने अपना घर देखा है, उन बैलों को लगाम पकड़कर खिंचते रहे और बेचारों को परेशान करे, उसके बजाय छोड़ दो न, वे घर ही पहुँचाएँगे। वे गढ्ढे में नहीं

गिराएँगे। यदि उन्हें गलत लगेगा तो तुरंत घूमकर जाएँगे, क्योंकि उन्हें खुद की सेफसाइड देखनी है न? और अगर कोई मूर्ख हाँकेगा तो मार डालेगा। इसी तरह जो उदयकर्म है न, वह फर्स्ट क्लास रास्ता ढूँढ निकालता है। यह हाँकने वाला (अहंकार) तो उल्टी दिशा में हाँकता है। फिर सब बिगाड़ देता है। समझ ही नहीं है न! इसलिए हम कहते हैं कि तू चुपचाप लगाम छोड़ दे न! एक दिन चलता है या नहीं, वह देख तो सही? तब उसे विश्वास हो जाएगा, तो फिर दूसरे दिन भी चलेगा।

प्रश्नकर्ता : तो उस दिन सहज रूप से जो चलता हो, उसे चलने देना है?

दादाश्री : लगाम नहीं पकड़नी है। जो चल रहा है वह ठीक है। तू जो सहज शब्द समझ रहा है, वह सहज अलग प्रकार का है। अभी यहाँ सहज नहीं कहलाता। सहज तो अंतिम स्टेशन की बात है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, तो दादा, उदयकर्म के अनुसार अपने आप ही जो चल रहा हो, उसी अनुसार सब चलने देना है?

दादाश्री : उदयकर्म जैसा करवाते हैं उसी अनुसार करने देना है।

व्यवस्थित का अनुभव होने के लिए...

प्रश्नकर्ता : तो इसमें कर्ता-अकर्ता, दोनों भाव को किस तरह से सिद्ध करना है?

दादाश्री : रविवार का दिन हो तो आपको ऐसा तय करना है सुबह उठते ही दादा से कहना कि आज मैं लगाम छोड़ देता हूँ। लगाम छोड़कर बैठना है। जैसे वह हाँकने वाला व्यक्ति लगाम छोड़कर बैठ जाता है न, वैसे ही लगाम छोड़कर बैठ जाना है और फिर देखते रहना है, गाड़ी चल रही है या बंद हो गई या गड्ढे में जा रही है, वह सब देखना है। जब तक लगाम पकड़ता है तब तक खुद हाँकने वाला बन जाता है, ड्राइवर बन जाता है। अब तुझे लगाम छोड़ देनी

है और दादा को लगाम सौंप देनी है। फिर आपको देखना है, चलता है या नहीं? बल्कि ज़्यादा अच्छा चलेगा। ऐसा चला-चलाकर तो दम निकाल दिया है इसीलिए सारे एक्सिडेन्ट होते हैं न! यह लगाम हाथ में है, इसीलिए तो एक्सिडेन्ट होते हैं।

आपको व्यवस्थित समझ में आ गया तो आपको अनुभव में आ गया। और यदि अनुभव में नहीं आया हो तो लगाम छोड़ दो, पाँचों (इन्द्रियों के) घोड़ों की और फिर रथ किस तरफ जा रहा है, उसे देखो। उसके बाद कहता है, यह तो बहुत अच्छा हुआ, सबकुछ इतना अच्छा हो गया और घोड़ों की नाक में से जो खून निकलता था, वह भी बंद हो गया। जिसे हाँकना नहीं आता हो, वह क्या करता है? जब चढ़ाई आती है तब लगाम खिंचता है और ढलान आने पर, जब उतार आती है तब ढील देता है, इसलिए उसे ठोकर लग जाती है। इसी के जैसे हाँकने का भी रहता है। अब इसे भान ही नहीं है और हाँकने बैठ गया है इसीलिए उस बेचारे का रक्त (खून) निकल गया है। वे बेचारे घोड़े भी समझ जाते हैं कि आज यह कोई घनचक्कर मिल गया है। ये घनचक्कर सेठ मिले हैं। जब कोई अच्छे सेठ मिलेंगे तब अपनी दशा सुधरेगी। तब कोई रास्ता मिल जाएगा। यानी ऐसा है, इसके बजाय तू छोड़ दे न। उसे छुड़वा दिया उसके बाद कहता है, 'यह तो बहुत अच्छा हुआ व्यवस्थित, बहुत सुंदर!' तब मैंने कहा, 'थोड़ा सा व्यवस्थित को सौंप दे भाई, लगाम नहीं पकड़ना।'

सिर्फ रविवार के दिन ऐसा नहीं कर सकते? महीने में चार दिन?

प्रश्नकर्ता : कर सकते हैं।

दादाश्री : यदि चार रविवार लगाम छोड़ दोगे तो पता चल जाएगा, आपको अनुभव में आ जाएगा, कर्ता-अकर्ता भाव।

सुबह उठते ही लगाम को हाथ में ले लेता है। भाई पकड़ना नहीं, छोड़ दे यहाँ से। हमारी लगाम तो हमेशा छूटी ही रहती है। हमारे हाथ में लगाम रहती ही नहीं। घोड़े चलते ही रहते हैं। आप

भी ऐसा अभ्यास कभी कर सकते हो न? हमारा तो हमेशा के लिए होता है। लगाम छोड़ देनी है या छोड़ने में डर लगता है?

करो एक दिन के लिए यह प्रयोग

प्रश्नकर्ता : लगाम अर्थात् 'मैं करता हूँ' इस भाव को छोड़ देना है?

दादाश्री : नहीं, लगाम अर्थात् 'मैं करता हूँ' वह भाव नहीं, सभी भाव। लगाम ही छोड़ देनी है। हर दिन लगाम ही पकड़ते हैं न। उस दिन लगाम छोड़ने के भाव पक्के किए, 'दादा, आपको यह लगाम सौंप दी, अब तो मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ।' तो फिर कुछ रहा ही नहीं न! उसके बाद तो पूरा दिन पता चल जाता है कि चाय मिलती है या नहीं मिलती? खाना मिलता है या नहीं? खाने में मिर्च मिलती है या नहीं, यदि मिर्च चाहिए तो? सब मिलता है। यह तो, मनुष्य को धीरज नहीं रहती न और ऐसा भान ही नहीं है न, 'मैं करता हूँ' तो होता है जबकि वर्ल्ड में संडास जाने की शक्ति वाला कोई व्यक्ति नहीं हुआ है। जब अटकती है तब पता चलता है कि यह मेरी स्वतंत्र शक्ति नहीं थी। उन डॉक्टरों को भी कब पता चलता है? जब अटकती है तब पता चल जाता है न? दूसरे डॉक्टर को बुलाना पड़ता है न? तब हम नहीं कहते, 'डॉक्टर, आप तो बहुत बड़े हो न!' तब कहे, 'नहीं! मुझे दूसरों को बुलाना पड़ता है' अर्थात् यह खुद की स्वतंत्र शक्ति नहीं है। अतः उस दिन कर्ता-अकर्ता दोनों भाव का पता चल जाता है।

वे पाँच कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ वे घोड़े के समान हैं, अब ये पाँच घोड़े चलते हैं। हाँकने वाले में समझ नहीं होने के कारण वह खिंचता रहता है तब घोड़े को ठोकर लग जाती है और गाड़ी उल्टी गिर जाती है। इसी तरह लोगों को हाँकना नहीं आता इसलिए कृष्ण भगवान ने क्या कहा कि भाई अर्जुन, तू अंदर बैठ, तुझे नहीं आएगा और भगवान खुद बैठे। भगवान बैठे अर्थात् व्यवस्थित यह सब चलाता है इसलिए आपको लगाम छोड़ देनी है। ये घोड़े किस

तरफ जा रहे हैं, उन्हें देखा करो। तब व्यवस्थित समझ में आएगा कि ओहोहो! पूरे दिन के लिए लगाम छोड़ दी तो भी यह चला। खाना-पीना, संडास वगैरह, व्यापार वगैरह सबकुछ हुआ? तब कहें, 'हाँ, सब अच्छा हुआ रोज़ के बजाय बहुत अच्छा हुआ।'

सिर्फ, लगाम छोड़ देनी है, इसलिए रात में ही तय कर लेना है कि सुबह उठे तब से दादा को लगाम सौंप देनी है। जैसे अर्जुन ने कृष्ण भगवान को सौंप दी थीं न, उसी तरह से सौंप देनी हैं।

लगाम छोड़ देने का यह प्रयोग आप सप्ताह में एक दिन तो करके देखो? रविवार हो, उस दिन सुबह के समय लगाम छोड़ देनी है और ऐसा कहना है कि 'दादा, यह लगाम आपको सौंपी', इन पाँच इन्द्रिय रूपी घोड़ों की लगाम आपको सौंप देनी है और आपको तो सिर्फ देखते ही रहना है कि यह किस तरह से चलता है। वे गाड़ी को गड्ढे में नहीं गिरने देंगे और कुछ भी नहीं होने देंगे। हम आपको सप्ताह में एक दिन लगाम छोड़ देने के लिए कहते हैं। कभी भूलचूक हो जाए तो 'दादा, मैंने यह लगाम फिर से पकड़ ली, उसके लिए मैं माफी माँगता हूँ और अब नहीं पकड़ूँगा।' ऐसा बोलकर फिर दोबारा लगाम छोड़ देनी है। शुरुआत में भूल हो जाएगी, प्रेक्टिस करने में थोड़ा समय लगेगा। उसके बाद दूसरी, तीसरी बार 'करेक्टनेस' आ जाएगी फिर उसके आगे बढ़ने के लिए आगे का प्रोग्राम देखना हो तो 'चंदूभाई क्या बोल रहे हैं, उसे देखते रहना है कि यह करेक्ट है या नहीं?'

ज्ञान समझकर, रहना जागृत

प्रश्नकर्ता : दादा, *लक्ष* तो उस अंतिम दशा का ही है, उस दशा के पूर्ण होने में ये जो भी कमियाँ हैं, जब समझ में आता है कि अंतिम दशा यह है और ऐसा ही होना चाहिए तब उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह तो, जब वह व्यवहार सभी तरह से छूट जाएगा तब आपका काम होगा।

प्रश्नकर्ता : अब अप्रयत्न दशा में पहुँचने के लिए फाइल में से किस तरह से निकलना है?

दादाश्री : वह तुझे पता चलता है न, वह कैसे? यह व्यवहार तुझसे नहीं चिपका है, तू व्यवहार से चिपका है। हम तो सावधान करते हैं कि भाई, ये सभी चीज़ें नुकसानदायक हैं। आपको जो चाहिए उसमें ये सभी चीज़ें बाधक हैं, इतना ही कहते हैं। फिर यदि उसे अच्छी लगती हो तो वह करता ही रहता है। उसमें कहाँ मेरी मनाही है?

प्रश्नकर्ता : कभी न कभी तो छूटना पड़ेगा ही न, उसके बगैर तो कोई चारा ही नहीं है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन फिर ज्ञान को समझ लेना है।

जिन्हें जल्दी हो उन्हें अपरिग्रही बन जाना चाहिए। हाँ, वर्ना पकौड़े खाते-खाते जाना। दोनों में से एक पक्का होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अब जिसे पूर्णता प्राप्त कर लेनी है, उसकी अपरिग्रही दशा होनी चाहिए। अभी जो पूरा व्यवहार बाकी है, उसका कैसे *निकाल* (निपटारा) करेंगे? उसमें अपरिग्रही दशा कैसे लानी है?

दादाश्री : वह तो, तेरा तुझे खुद को ही पता चल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : उसकी चाबी दीजिए न।

दादाश्री : नहीं, लेकिन यह सब उत्पन्न किसने किया? तूने किया? तू पढ़ाई करता था, तो नौकरी में कैसे आया? तूने क्या किया? वह तो, व्यवहार को चिपका है और फिर वापस कहता है कि मैं करता हूँ। यह सब चिपक गया है।

प्रश्नकर्ता : अगर खुद व्यवहार से चिपका है तो फिर जिस समय छोड़ना हो उस समय व्यवहार को छोड़ सकते हैं क्या? उसे किस तरह से छोड़ सकते हैं?

दादाश्री : जिस तरह से बंध गया उस तरह से छोड़ देना है।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद जो घर की फाइलें रही, उन घर की फाइलों का क्या?

दादाश्री : उन फाइलों का *निकाल* भी आपको करना है न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब तक व्यवहार है तब तक वह बीच में आया ही करेगा न?

दादाश्री : उस व्यवहार का तो जल्दी से *निकाल* कर देना है। यदि प्लेन की टिकट लेनी हो और बहुत बारिश हो रही हो तो *निकाल* किए बगैर बैठे रहेगा क्या?

प्रश्नकर्ता : वह तो रास्ता ढूँढकर पहुँच ही जाएगा।

जानो व्यवहार को उदय स्वरूप

भगवान ने अनिवार्य व्यवहार को शुद्ध व्यवहार कहा है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो जो नौकरी करनी पड़ती है, उसे?

दादाश्री : नहीं, नौकरी वह अनिवार्य व्यवहार नहीं है। वह है ही नहीं, नौकरी करना है ही नहीं। नौकरी, व्यापार या खेती-बाड़ी करना, ऐसा है ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : तो वह बंद करने वाली चीज़ हो गई न?

दादाश्री : उसमें तो सुख होता ही नहीं न! जिसे आगे की दशा प्राप्त करनी है, उसे सुख लगता ही नहीं। वह तो, जो समभाव से *निकाल* (निपटारा) करता होगा, उसे चलेगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसी आत्म जागृति उत्पन्न होना और व्यवहार करना, वह खुद की सारी शक्तियों को व्यर्थ खर्च करके व्यवहार करने जैसा है। दादा से ज्ञान की समझ प्राप्त करना और वहाँ जाकर सारी शक्तियों को व्यर्थ खर्च कर देना, उसके जैसा होता है यह तो।

दादाश्री : ऐसा है न कि यह खाना शरीर के लिए ज़रूरी है,

नेसेसिटी। इसके बगैर शरीर नहीं रहेगा, मर जाएगा। सिर्फ, उतना ही व्यवहार है और वह भी भगवान ने कहा है कि एक ही बार खाना। उससे मरोगे नहीं। वह भी माँगकर खाना तो फिर आपको बर्तन वगैरह लाने की झंझट नहीं रहेगी, कपड़ा माँगकर ले लेना। फिर सारा दिन पुरुषार्थ करते रहना, उपयोग में रहना।

प्रश्नकर्ता : यह उदय स्वरूप से होता रहे और खुद उपयोग में रहे?

दादाश्री : हाँ, यदि सारा दिन उपयोग में रहेंगे न तो फिर झंझट ही नहीं, कोई तकलीफ ही नहीं।

आवश्यक क्या? अनावश्यक क्या?

यह तो खुद ही जंजाल में फँसता जाता है। दिनोंदिन और अधिक फँसता जाता है। घर में बगीचा नहीं था तो लोगों का बगीचा देखकर खुद बगीचा बनाता है। उसके बाद वहाँ खोदता रहता है, खाद डालता है, फिर पानी डालता रहता है। बल्कि यह जंजाल बढ़ाता है, भाई। कितनी जंजाल रखने जैसी थी?

प्रश्नकर्ता : सिर्फ, खाने-पीने की ही।

दादाश्री : हाँ, जिसे आवश्यक कहा जाता है। आवश्यक अर्थात् जिस के बगैर नहीं चलता। खाएँगे नहीं तो क्या होगा? मनुष्यपना बेकार में चला जाएगा। क्या होगा? अर्थात् ऐसा कुछ नहीं कि अभी तुम पूरन-पूरी और ऐसा-वैसा सबकुछ खाओ। जो कुछ भी खिचड़ी या दाल-चावल हो लेकिन आवश्यक हो, उसी के लिए हमें परवश रहना था। किसके लिए? आवश्यक के लिए।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : अब खाया तो क्या सिर्फ, खाने से काम चलेगा? फिर उसका परिणाम आएगा, रिज़ल्ट तो आएगा या नहीं, जो करोगे उसका?

प्रश्नकर्ता : आता ही रहता है।

दादाश्री : खाने का क्या परिणाम आता है?

प्रश्नकर्ता : संडास जाना पड़ता है।

दादाश्री : फिर पानी पीया तो? बाथरूम में भागदौड़ करनी पड़ती है। श्वास लिया, उसका उच्छ्वास होता है लेकिन इसकी ज़रूरत है। यदि श्वास नहीं लेंगें तो भी नुकसान होगा, पानी नहीं पीएँगे तो भी नुकसान। ये सभी आवश्यक चीज़ें हैं। अब कपड़े भी आवश्यक हैं। ठंड के दिनों में क्या होता है? क्योंकि मनुष्य इन सब सीज़न के अधीन है, वे सारी सीज़न मनुष्य की प्रकृति के अधीन नहीं हो सकती। कोई व्यक्ति ठंड के दिनों में गरम कपड़ों के बगैर रह सकता है, जबकि गर्मी में उससे नहीं रहा जाएगा। ऐसा होता है न? इसलिए कैसे भी कपड़े चाहिए लेकिन कपड़े कैसे होने चाहिए? खादी के हो, अन्य कोई भी हो, चाहे जैसे भी हो, सस्ते और अपने शरीर को ढककर रखें वैसे चाहिए। यह मैंने कॉलर बनवाया है वह नहीं चाहिए। यह कफ बनवाया है उसकी भी कोई ज़रूरत नहीं। कॉलर और कफ बनवाते हैं न? अनावश्यक। इसलिए यदि आवश्यक को ही समझ लें तो व्यक्ति को किसी भी प्रकार का दु:ख नहीं रहेगा। इन जानवरों को दु:ख नहीं है, तो फिर मनुष्यों को दु:ख होता होगा? यह तो अनावश्यक को बढ़ाता जाता है। स्लेब डाला और ऊपर से मेंग्लौरी खपरैल डाली। सबकुछ बढ़ाता है या नहीं? आपने थोड़ा-बहुत बढ़ाया है, क्या?

फिर फरियाद करता है, 'या खुदा परवरदिगार! फँस गया' कहेगा! अरे भाई, तुमने ही बढ़ाया है न तो फिर उसमें खुदा क्या करेगा? आप अनावश्यक बढ़ाएँगे उसमें खुदा बेचारा क्या करेगा? आप को क्या लगता है? कुछ बोलते नहीं? आप अनावश्यक चीज़ों को बढ़ाओ और फिर खुदा का नाम लेकर कहो कि हे खुदा! मैं फँस गया। इसलिए इस संसार में कौन सी चीज़ आवश्यक है और कौन सी अनावश्यक है, वह पक्का कर लेना। आवश्यक अर्थात् अवश्य ही चाहिए और अनावश्यक तो ऊपर से बढ़ाया, मोह के कारण। उसके

पास राजमहल में चाहे कितनी भी अनावश्यक चीज़ें हो, फिर भी बारह-साढ़े बारह बज़े आहार लेने के लिए तो आना ही पड़ेगा न? क्योंकि वह आवश्यक चीज़ है। यदि और कुछ नहीं हो तो चलेगा। पानी है, खाना है, हवा है, वे सभी आवश्यक चीज़ें हैं। क्या ये काम की बात है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : अब, अनावश्यक कम हो जाए ऐसा भी नहीं है। कोई कहेगा, मुझे कम करना है फिर भी नहीं होता। बेटे की पत्नी फरियाद करती है, घर में पत्नी किच-किच करती रहती है। लेकिन मन में ऐसा भाव रहता है कि मुझे कम करना है। इतना भाव हुआ तो भी बहुत हो गया।

ऐसा है न, हमें ज़िंदगी में आवश्यक और अनावश्यक दोनों का लिस्ट बना लेना चाहिए। अपने घर में हर एक चीज़ देख लेनी चाहिए और आवश्यक कितनी है और अनावश्यक कितनी है। अनावश्यक के ऊपर से हमें भाव हटा लेना चाहिए और आवश्यक के साथ तो भाव रखना ही पड़ेगा, कोई चारा ही नहीं है न!

जितना ज़्यादा अनावश्यक, उतनी ज़्यादा *उपाधि*। आवश्यक भी *उपाधि* ही है उसके बावजूद उसे *उपाधि* नहीं कहते, क्योंकि वे ज़रूरी हैं लेकिन अनावश्यक वे सभी *उपाधि* हैं।

हर एक चीज़, सबकुछ आवश्यक, कुछ भी सोचे बगैर सहज होनी चाहिए। अपने आप हो जाए। जैसे कि पेशाब करने के लिए राह नहीं देखनी पड़ती। अपने आप ही हो जाती है और वह जगह भी नहीं देखती। जबकि इन्हें तो, बुद्धिशालियों को जगह देखनी पड़ती है। उन्हें तो जहाँ पेशाब करना हो वहाँ हो जाए, उसे आवश्यक कहते हैं।

सहजता की अंतिम दशा कैसी?

प्रश्नकर्ता : यह तो एकदम अंतिम दशा की बात हुई न?

दादाश्री : अंतिम ही है न! और दूसरी कौन सी? अंतिम दशा को ध्यान में रखकर अगर हम आगे की दशा में बढ़ते जाएँगे तो ऐसी दशा उत्पन्न होगी लेकिन अगर आगे की ही दुकान बढ़ाते गए तो? अंतिम दशा देर से आएगी।

प्रश्नकर्ता : यदि अंतिम दशा का पिक्चर सामने होगा तभी वहाँ तक पहुँच पाएँगे न?

दादाश्री : तभी जा सकते हैं। यह एक पिक्चर अंतिम दशा का देता हूँ। सिर्फ आवश्यक ही रहेगा। वहाँ थाली या लोटा नहीं होता और आवश्यक के लिए भी पेशाबघर आने तक राह नहीं देखता। वह सहज, वहाँ पर ही, गाय-भैंसों के समान। उन्हें शर्म वगैरह कुछ नहीं होती। गाय-भैंसों को शर्म आती है क्या? क्यों, इस लग्न मंडप के नीचे गाय खड़ी हो तो भी? उस समय वे विवेक नहीं करती?

प्रश्नकर्ता : ज़रा भी नहीं, किसी का विवेक नहीं करती। सभी के कपड़े बिगाड़ देती है। तो ऐसी सहज स्थिति के समय खुद का उपयोग कैसा रहता होगा?

दादाश्री : बिल्कुल कम्प्लीट! यदि देह सहज तो आत्मा बिल्कुल कम्प्लीट!

प्रश्नकर्ता : तो बाहर के तरफ उसकी दृष्टि ही नहीं होती?

दादाश्री : वह सब कम्प्लीट होता है। बाहर वह सब दिखाई देता है। दृष्टि में ही आ गया सबकुछ और वह ही है सहज आत्मस्वरूप, वह परम गुरु है। जिसका आत्मा इस तरह से सहज रहता हो, वही परम गुरु है!

प्रश्नकर्ता : तो फिर ये जो अभी कहते हैं न कि यह, जो पेशाब घर ढूँढते हैं या शर्म आती है, वह किसे? वह क्या चीज़ है?

दादाश्री : विवेक तो रहा ही न? वह सहजता से नहीं रहने

देता। सहजता में तो कुछ भी विवेक नहीं होता। सहजता में तो वह कब खाएगा कि जब उसे कोई दे तब खाएगा, वर्ना, माँगना भी नहीं, उसका विचार भी नहीं, कुछ भी नहीं। अगर भूख लगी हो तो उसमें भी खुद नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : जब भूख लगे तब क्या करता है?

दादाश्री : कुछ भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : उसके उदय भी ऐसे होते हैं न कि जब भूख लगती है तब चीज़ मिल जाती है।

दादाश्री : वह तो नियम ही है, मिल ही जाती है। सबकुछ मिल जाता है, सहज ही।

प्रश्नकर्ता : तो फिर ये सभी आवश्यक में ही आता है न जैसे कि खाने का है, कपड़े नहीं न? आवश्यक में कपड़े नहीं आते?

दादाश्री : कुछ भी नहीं। आवश्यकता में कपड़े वगैरह कुछ नहीं आते, जो देह के लिए ज़रूरी हो, वह।

सहज दशा तक पहुँचने के प्रयत्न में

प्रश्नकर्ता : अभी हम इन संयोगों में हैं और ये सारी आवश्यकता से बहुत अधिक वस्तुएँ हैं, यहाँ से आवश्यक स्थिति तक पहुँचने के लिए कौन सा मार्ग है? रास्ता कौन सा है?

दादाश्री : यह जैसे-जैसे कम होता है वैसे-वैसे। जितना बढ़ाएँगे उतना लेट होगा। यदि कम करेंगे तो जल्दी होगा।

प्रश्नकर्ता : कम करने के लिए क्या करना है?

दादाश्री : यदि तुझे शादी नहीं करनी है तो कम नहीं होगा? और जिसे शादी करनी हो, उसे?

प्रश्नकर्ता : बढ़ जाएगा।

दादाश्री : हाँ! तो बस। कुछ निश्चय तो होना चाहिए न? सब योजनापूर्वक होता है या ऐसे ही गप्प? मोक्ष में जाना है तो योजनापूर्वक होगा न?

प्रश्नकर्ता : योजनापूर्वक अर्थात् ऐसा है कि खुद को करना पड़ता है? खुद को योजनापूर्वक सेटिंग करना पड़ता है? ऐसे सभी डिसिज़न लेने पड़ते हैं?

दादाश्री : लेने नहीं हैं, वे सब तो हो ही चुके हैं। यह तो, हम सिर्फ बातचीत कर रहे हैं, इसमें से जितना भाव कम होता जाएगा उतना ठीक रहेगा तभी सहज हो पाएगा, नहीं तो किस तरह से सहज होगा, वह? अपने मन का माना हुआ नहीं चलता। क्या मन का माना हुआ एक भी चला, तो वह चलता होगा?

प्रश्नकर्ता : यदि शादी नहीं करनी है तो उस दिशा की सारी झंझट कम होती जाएगी न?

दादाश्री : जितनी झंझट कम उतना सहज होता जाएगा और उतना ही हेल्प फुल होगा। झमेलों को आगे बढाएँगे तो सहजता कम होती जाएगी। जब से हमने ज्ञान दिया है तब से थोड़ा सा सहज हो गया है, कुछ अंश में और यदि कोई ऐसा कहेगा कि चलो न, अब तो दादा ने इन्हें 'फाइल' कहा है जितनी करो उतनी, उसमें क्या हर्ज है? तो क्या हम मना करेंगे, यदि उसे उल्टा करना हो तो?

प्रश्नकर्ता : इन बाहर की चीजों को कम करने के लिए अंदर की जागृति कैसी होनी चाहिए?

दादाश्री : अंदर की जागृति ऐसी रहनी चाहिए कि वे वस्तुएँ उसे दुःखदायी लगती रहे।

प्रश्नकर्ता : अब आपने ऐसा बताया कि आवश्यकता के अलावा जितनी चीजें हैं, उन सभी चीज़ों को जितनी छोड़ सके उतनी छोड़ देनी चाहिए, ऐसा ही हुआ न?

दादाश्री : हाँ! सभी नहीं होनी चाहिए। अगर चिपक गई हो तो उन्हें धीरे-धीरे किस तरह से छोड़ दें, उसके प्रयत्न में रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् वह छोड़ देना, ऐसा कहा न, वह किन चीज़ों में होना चाहिए?

दादाश्री : छोड़ देना, इसमें शब्द नहीं ढूँढने हैं। यह तो, हमें अंदर समझ लेना है कि इससे कब छूटेंगे? यदि खुद को अहितकारी लगेगा तो तुरंत छोड़ देगा। देखो न, शादी के लिए साफ मना कर देता है।

प्रश्नकर्ता : यह खुद को अहितकारी चीज़ लगती है, ऐसा सभी बात में समझ में आना चाहिए।

दादाश्री : जब सभी में लगेगा तभी काम होगा न! अभी तो दूसरे में इन्टरेस्ट है। आपको शादी करने में इन्टरेस्ट नहीं है तो साफ मना कर देते हो, नहीं है मेरा। यदि बाहर के संयोग आते हैं तो भी फेंक देते हो। ऐसा सब होना चाहिए न?

परिग्रह के सागर में संपूर्ण अपरिग्रही

प्रश्नकर्ता : तो इन परिग्रह को कम करना, वह लिमिट या परिग्रह की मर्यादा रखनी है?

दादाश्री : ज्ञान प्राप्ति के बाद आपका सभी डिस्चार्ज है। परिग्रह बढ़ाना, वह भी डिस्चार्ज और परिग्रह की मर्यादा करनी, वह भी डिस्चार्ज और अपरिग्रही रहना, वह भी डिस्चार्ज है क्योंकि अपरिग्रही रहने का जो भाव किया था, उससे अपरिग्रही हुआ। लेकिन वह भी डिस्चार्ज है, उसे भी छोड़ देना पड़ेगा। वह भी मोक्ष में साथ में नहीं आएगा। वह तो जिस स्टेशन पर हेल्प करता हो उस स्टेशन पर हेल्प करेगा। इस स्टेशन पर कुछ हेल्प नहीं करेगा। इस स्टेशन का हल तो तुझे लाना है। इन सभी को सॉल्व कर लेना है।

प्रश्नकर्ता : जब अंदर ऐसा एकदम पक्का है कि यह चीज़ मेरी नहीं है तो अगर उसे कोई ले जाए तो भी मैं उससे अलग हूँ न?

दादाश्री : हाँ, ऐसा सब होना चाहिए उसमें हर्ज नहीं है। उन भरत राजा को ऐसा ही था कि सारा राज्य ले लें, यदि रानियों को उठाकर ले जाए तो भी वे हँसते, ऐसे थे। या तो फिर ये सब होना ही नहीं चाहिए। या फिर परिग्रह होने के बावजूद संपूर्ण रूप से अपरिग्रही होना चाहिए। हमारा ऐसा ही है, सभी परिग्रह होने के बावजूद भी संपूर्ण रूप से अपरिग्रही!

प्रश्नकर्ता : सभी परिग्रह होने के बावजूद संपूर्ण रूप से अपरिग्रही अर्थात् चीज़ और खुद, उनका ऐसा क्या कनेक्शन किया? उन्हें किस तरह से अलग किया?

दादाश्री : अलग नहीं किया, 'मैं' अपरिग्रह वाला ही हूँ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह किस तरह से? क्योंकि अभी के सभी संयोग ऐसे हैं कि एक भी चीज़ को हटाने से हट जाए, ऐसी नहीं है। भावना में तो है लेकिन पहला रास्ता यह है कि उन चीज़ों से अलग हो जाना है।

दादाश्री : 'आइ' विदाउट 'माइ' इज़ गॉड। सभी 'माइ' की झंझट है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यदि 'माइ' को निकाल देंगे तो भले ही चीज़ें वहीं के वहीं पड़ी रहे?

दादाश्री : हाँ, बस, अंत में इस देह को भी सहज करना है। जिसने ज़्यादा चित्रण किया हो, उसने ज़्यादा असहज किया है इसलिए उसे सहज होने में समय लगेगा। हमने चित्रण नहीं किया है इसलिए जल्दी से हल आ गया!

❖❖❖❖❖

[९]

नहीं करना कुछ भी, केवल जानना है

सहजता का मतलब ही अप्रयास दशा

प्रश्नकर्ता : वह चरणविधि में बोलते हैं न, 'मन-वचन-काया की आपके जैसी सहजता मुझे प्राप्त हो', तो वह सहजता कैसी?

दादाश्री : सहजता अर्थात् मोटी भाषा में कहे तो अप्रयास दशा, कोई भी प्रयास नहीं। आत्मा से भी प्रयास नहीं और देह से भी कोई प्रयास नहीं। मानसिक रूप से भी प्रयास नहीं और बुद्धि से भी प्रयास नहीं।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद मन-वचन-काया का सुमेल तो रहता है न?

दादाश्री : अनायास दशा हो गई। बस, प्रयास नहीं और उसमें से प्रयास करने वाला चला गया। मन-वचन-काया काम करने वाले हैं लेकिन प्रयास करने वाला चला गया। प्रयास करने वाले की गैरहाज़िरी है इसलिए वह सहज दशा और प्रयास करने वाले की हाज़िरी, वह असहज इसलिए उस प्रयास करने वाले के चले जाने से सहज है। फिर जो भी क्रिया हो रही हो उस क्रिया में कोई हर्ज नहीं, प्रयास करने वाले की आपत्ति है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् उसे यह प्रयास करने की पूर्व की आदत ही पड़ी है।

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : क्या किसी भी प्रक्रिया में सचमुच प्रयास की ज़रूरत ही नहीं है?

दादाश्री : प्रयास की ज़रूरत है लेकिन वह उसका करने वाला नहीं होना चाहिए। प्रयास की ज़रूरत नहीं है, अगर ऐसा कहेंगे तो फिर लोग तो काम करना ही छोड़ देंगे। छोड़ देने का भाव करेंगे इसलिए प्रयास की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अंदर की हकीकत क्या है, एक्ज़ेक्ट?

दादाश्री : वह प्रयास करने वाला ही चला गया तो बस हो गया।

प्रश्नकर्ता : ये जो मन-वचन-काया की प्रक्रिया होती है उस समय प्रयास करने वाला वास्तव में होता है क्या?

दादाश्री : प्रयास करने वाला है इसीलिए यह प्रयास कहलाता है। वह सहज नहीं कहलाता। यदि प्रयास करने वाला चला जाता है तो वही चीज़ फिर सहज कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : तो यह मन-वचन-काया की जो प्रक्रिया, प्रयास करने वाला करता है तब जो हो जाता है और प्रयास करने वाला चला जाता है तब जो हो जाता है, वह वास्तव में तो दोनों मिकेनिकल ही था न?

दादाश्री : होने में चीज़ एक ही है, होने में चेन्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यदि इसने प्रयास नहीं किया होता तो भी वही होता?

दादाश्री : प्रयास में दखल है, वही झंझट है।

प्रश्नकर्ता : दखल का *भोगवटा* खुद को आता है या दखल से मन-वचन-काया में परिवर्तन होता है?

दादाश्री : वह परिवर्तन (बदलाव) होने वाला ही नहीं है। प्रयास किया इसलिए अप्रयास नहीं कहेंगे।

प्रश्नकर्ता : वह सही है लेकिन वह जो प्रयास होता है, उससे मन-वचन काया की प्रक्रिया में बदलाव होता है क्या?

दादाश्री : कुछ भी बदलाव नहीं होता!

प्रश्नकर्ता : तो फिर प्रयास करने से क्या परिणाम आता है?

दादाश्री : वह तो सिर्फ, उसका अहंकार है, 'मैं कर्ता हूँ'।

प्रश्नकर्ता : उससे अगले जन्म की ज़िम्मेदारी बंध जाती है क्या?

दादाश्री : हाँ! अगले जन्म की ज़िम्मेदारी लेता है, क्योंकि वह रोंग बिलीफ हैं।

प्रश्नकर्ता : और यदि वह रोंग बिलीफ छूट जाए तो क्या प्रयास करने वाला चला गया कहलाएगा?

दादाश्री : फिर अप्रयास दशा, सहज हो गया। हम खाते हैं, पीते हैं, वह सब सहज कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : तो जब रोंग बिलीफ थी तब प्रयास करने वाला कहलाया, उन रोंग बिलीफों के जाने के बाद फिर क्या होता है?

दादाश्री : कुछ नहीं होता, दखल चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिसे रोंग बिलीफ थी उसका अस्तित्व फिर रहता है क्या?

दादाश्री : एक तरफ आत्मा और एक तरफ यह देह, अप्रयास देह, मन-वचन-काया। उसके बाद पुद्गल तो है ही लेकिन वह बीच में इगोइज़म वाला भाग चला गया।

जिसे स्ट्रेन होता था वह चला गया, थकान होती थी वह चला गया, ऊब जाता था वह चला गया, वे सब चले गए।

प्रश्नकर्ता : तो रहा कौन?

दादाश्री : कोई नहीं, यह सहज रहा। किसी दूसरे का बीच में दखल नहीं रहा।

प्रश्नकर्ता : यह देह की जो क्रिया करनी पड़ती है, वाणी है, लेकिन उसमें अहंकार की ज़रूरत तो पड़ती है न?

दादाश्री : कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। वहाँ कॉज़ेज़ करने वाला ही चला गया! सिर्फ इफेक्ट रह गई।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह आप कहते हो न, कि जब तक अहंकार साइन नहीं करता तब तक क्रिया में नहीं आता, तो फिर वह अहंकार कौन सा है?

दादाश्री : डिस्चार्ज अहंकार।

प्रश्नकर्ता : तो इस डिस्चार्ज अहंकार की क्रिया में, इसके परिणाम में क्या फर्क होता है?

दादाश्री : सहज! प्रयास करने वाला नहीं रहता, सहज होता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ! लेकिन उसमें वह सहज होता है और वह प्रयास करने वाला अहंकार नहीं रहता, लेकिन डिस्चार्ज अहंकार तो इसमें रहता है न?

दादाश्री : उसमें कोई हर्ज नहीं है। वह तो रहेगा ही न! वह तो, उसका तो सब मृत। उसे ही सहज क्रिया कहते हैं।

'देखने' से चले जाते हैं अंतराय, नहीं कि हटाने से

प्रश्नकर्ता : मोक्ष प्राप्त करना, वह सहज है। उस सहज में जो अंतराय आते हैं, उसे रोकने के लिए यह पुरुषार्थ है?

दादाश्री : हाँ! लेकिन वह पुरुषार्थ अर्थात् सिर्फ 'देखना' है। अंतरायों को देखना है और कुछ नहीं करना है। हटाने में तो फिर हटाने वाला चाहिए। अर्थात् संयोगों को हटाना, वह गुनाह है। जो संयोग वियोगी स्वभाव के हैं, उन्हें हटाना, वह गुनाह है इसलिए हमें देखते ही रहना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यह बात सच है कि मोक्ष प्राप्त करने में उसका पुरुषार्थ करने में कुछ भी कर्तापन नहीं है, क्या वह ठीक है?

दादाश्री : वह चीज़ सहज है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् वह अपना स्वभाव है, आत्मा का?

दादाश्री : वह तो आत्मा का स्वभाव है। जैसे यह पानी मिसीसिपी नदी में से निकलता है वहाँ से तीन हज़ार माइल के बाद अपने आप समुद्र को खोज ही लेता है। वह उसका स्वभाव है, सहज स्वभाव है।

प्रश्नकर्ता : उस स्वभाव में आने के लिए पुरुषार्थ करना पड़ेगा न?

दादाश्री : विभाविक पुरुषार्थ करेंगे तो मिलेगा? पागल मनुष्य पुरुषार्थ करेगा और समझदार हो जाएगा ऐसा होता है क्या? अतः समझदार मनुष्य के शरण में जाकर कहना चाहिए कि आप कृपा कीजिए।

प्रश्नकर्ता : दादा, आप ऐसा कहते हो न कि मोक्ष दो घंटों में ही मिल जाता है। पहले, यदि ज्ञानी के अंतराय जाएँगे तब न!

दादाश्री : हाँ, लेकिन वे अंतराय नहीं जाते न! अंतराय किए हैं न!

प्रश्नकर्ता : हाँ! लेकिन वह आपने कहा था, कि 'सिर्फ उन अंतरायों को देखना ही है ऐसा कहा, ज्ञाता-दृष्टा भाव में रहकर'।

दादाश्री : देखने पर ही छुटकारा है। जो अंतराय हैं वे संयोग स्वरूप से आते हैं और वे अपने आप वियोगी स्वभाव के हैं। उन्हें देखने पर ही छुटकारा होता है।

जहाँ संयोग निकाली है वहाँ झंझट किसलिए?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, इसमें तो कितने जन्म चाहिए उससे छूटने के लिए? तो उसके लिए यह सब *निकाली* (निपटारा) है, ऐसा समझना है क्या?

दादाश्री : *निकाली* ही है। यह तो, लोगों को समझ में नहीं आने से यह गड़बड़ की है! यदि *निकाली* है तो समझ लो न! यदि ग्रहण

करोगे तो चिपक जाएगा, यदि त्याग करोगे तो अहंकार चिपक जाएगा। त्याग करने वाला भी अहंकारी ही होता है और त्याग का फल फिर आगे मिलता है। लोग कहते हैं न, 'त्यागे सो आगे।' वे कहते हैं कि यदि आपको देवगति का सुख भोगना है तो यहाँ एक स्त्री को छोड़ दो। जबकि हमें तो त्याग-ग्रहण दोनों नहीं चाहिए, *निकाल* ही करना है।

सभी संयोग वियोगी स्वभाव के हैं और वे संयोग अपने दखल के कारण ही उत्पन्न हुए हैं। अगर दखल नहीं की होती तो संयोग उत्पन्न ही नहीं होते। जब तक ज्ञान नहीं मिला था तब तक दखल ही करते रहते थे और मन में ऐसे मानकर घूमते थे, कि मैं तो भगवान के धर्म का पालन कर रहा हूँ!

जड़ ने चैतन्य बन्ने द्रव्यनो स्वभाव भिन्न,
सुप्रतितपणे बन्ने जेने समजाय छे,
स्वरूप चेतन निज, जड़ छे संबंध मात्र...

- श्रीमद् राजचंद्र

जड़ संबंध है और आत्मा चैतन्य है, खुद है। खुद संबंधी और यह जड़, संबंध मात्र है। हमें संयोगों का संबंध हुआ है। बंध नहीं हुआ, संबंध हुआ है और संयोग फिर वियोगी स्वभाव के हैं। हम कहते हैं कि यह चिपका, यह चिपका। भाई, चिपका लेकिन उस बला को छुड़वाने के लिए ओझा को बुलाना पड़ेगा जबकि यह तो अपने आप समय आने पर छूट जाएगा। यदि यह बला किसी को लग जाए न, तो ओझा को बुलाना पड़ता है तब उतरती है। जबकि ये संयोग जो तुझसे चिपके हैं न, वे वियोगी स्वभाव के हैं इसलिए तुझे ओझा को नहीं बुलाना पड़ेगा। यदि एक बार ज्ञानीपुरुष से आत्मा प्राप्त कर लें तो फिर सभी संयोग संबंध वियोगी स्वभाव वाले हैं।

संयोग पराये, सहजता खुद की

प्रश्नकर्ता : संयोग में से सहज में गया तो फिर छूट गया और फिर सहज में ही आ गया न?

दादाश्री : सहज में रहा इसलिए संयोग छूट जाएगा। खुद सहज में गया इसलिए संयोग छूट गया। संयोग में से खुद सहज में जा सकता है और सहज में जाने के बाद फिर संयोग छूट जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : अब, वे संयोग भी सहज में जाते हैं क्या?

दादाश्री : नहीं, संयोग में से सहज में जाते हैं। संयोग सहज नहीं होते न! सहज अलग चीज़ है और संयोग अलग चीज़ है।

अंतर, 'करना पड़ता है' और 'बरतते हैं' उसमें

प्रश्नकर्ता : एक बार आपने सत्संग में कहा था कि एक स्टेज ऐसी आती है कि चंदूभाई करता है और हम उसमें ही तन्मयाकार होते हैं। दूसरी स्टेज ऐसी आती है कि चंदूभाई अलग और खुद अलग यानी यह कर्ता अलग और खुद अलग और तीसरी टॉप की स्टेज ऐसी है कि चंदूभाई क्या कर रहे हैं, उसे भी देखता है, आत्मा चंदूभाई को देखता है, वह समझाइए ज़रा।

दादाश्री : उसमें क्या समझना है?

प्रश्नकर्ता : वह कौन सा स्टेज कहलाता है?

दादाश्री : ऐसा है न, यदि देखने के कार्य में लगे हो तो वह देखने का कार्य सहज होना चाहिए। देखना, उसे करना पड़ता है, ज्ञाता-दृष्टा रहना पड़ता है इसलिए उसे भी जानने वाला ऊपर है। ज्ञाता-दृष्टा रहना पड़ता है। फिर, वह मैनेजर हो गया वापस। वापस उसका ऊपरी रहा। उस अंतिम ऊपरी को तो देखना नहीं पड़ता, सहज ही दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह ज्ञाता-दृष्टा देखना पड़ता है, 'वह' कौन और 'इसे' भी देखने वाला है, वह कौन?

दादाश्री : 'इसे' भी देखता है, वह 'मूल' स्वरूप। जिसे देखना पड़ता है वह बीच वाला उपयोग। अर्थात् इसे भी जानने वाला, वह

ठेठ अंतिम दशा में। जैसे कि आईने के सामने हम ऐसे बैठे हो तो हम सभी तुरंत आईने में दिखाई देते हैं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उसे क्या देखना पड़ता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : इसी तरह आत्मा में झलकता (प्रतिबिंबित होता है) है, सबकुछ पूरा जगत् अंदर झलकता है।

प्रश्नकर्ता : वह 'बीच वाला' कौन है, दादा?

दादाश्री : उपयोग।

प्रश्नकर्ता : वह उपयोग, लेकिन किसका उपयोग है?

दादाश्री : वह, उस 'प्रज्ञा' का। यदि प्रज्ञा के उपयोग में आ गया तो बहुत हो गया। उससे आगे हमें ज़रूरत नहीं है, वहाँ तक अपना कॉलेज है!

दशा, सहजात्म स्वरूप की

यदि उपयोग, उपयोग में रहेगा तो जागृति, जागृति में ही रहेगी, बाहर खींचेगी ही नहीं। बाहर जो भी दिखाई देगा, वह सहज दिखाई देगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, उस समय स्वरूप की स्थिति कहलाएगी न, जब उपयोग में उपयोग रहेगा तब?

दादाश्री : वह तो सब से बड़ी स्वरूप की स्थिति है। स्वरूप की स्थिति तो किसके लिए लिखा है कि जो अस्थिर हो गया हो उसके लिए। जिसकी स्थिति हट जाती हो, उसे थोड़े समय के लिए रहा तो उतने समय के लिए स्वरूप की स्थिति रही, ऐसा कहेंगे। लेकिन जिसका उपयोग हटता ही नहीं, उसकी स्वरूप की स्थिति कैसी? वहाँ पर तो स्वरूप ही है।

प्रश्नकर्ता : इसे तो सहज स्थिति कहेंगे न?

दादाश्री : वह सहज स्थिति ही कहलाएगी। सहज आत्मा कहलाएगा, सहजात्मा। सहज स्थिति भी नहीं।

'केवलज्ञान' के लिए कुछ करना है?

संसार के लोग कहते हैं, 'केवलज्ञान' करने की चीज़ है। नहीं, वह तो जानने की चीज़ है। करने की चीज़ तो कुदरत चला रही है। करना वही भ्रांति है। यह शक्ति कितने वैभव से आपके लिए कर रही है! उस शक्ति को तो पहचानो। यह तो 'व्यवस्थित' शक्ति का काम है।

यह करो, यह करो, वे फिर करने बैठे! इसीलिए तो भगवान ऐसी मुद्रा में बैठे हैं। ऐसे पद्मासन में इस तरह से बैठे। हे भगवान! यह आप क्या सिखाना चाहते हो? तो कहते हैं, चुपचाप यही करो। सहज रूप से चल ही रहा है, उसमें दखलंदाज़ी नहीं करना। नहीं चलाना है, ऐसा भी नहीं कहना है और चलाना है, ऐसा भी नहीं कहना है। तो क्या कहना है? दखलंदाज़ी नहीं करूँगा।

जहाँ दखलंदाज़ी नहीं, वहाँ अपने आप 'विलय' होता है

यह विज्ञान कैसा है? अपने आप ही विलय होता है, निकालना नहीं पड़ता क्योंकि वह जीवित नहीं है। इस संसार की जो आदतें हैं न, जिन्हें ज्ञान नहीं मिला है, उनके लिए जीवित हैं और इनकी (ज्ञान वाले की) जो आदतें हैं, वे मृत हैं। इसलिए कभी न कभी अपने आप, जैसे छिपकली की पूँछ कट गई हो तो भी वह हिलती ही रहती है, लेकिन क्या वह ऐसे हमेशा हिलती रहेगी? कब तक? उसमें जीवन नहीं है, उसमें दूसरे तत्त्व हैं, जब वे तत्त्व निकल जाएँगे, तो फिर बंद हो जाएगी। ऐसा ही यहाँ पर कुछ छोड़ना नहीं है, बिल्कुल कुछ भी नहीं छोड़ना है। अपने आप ही छूट जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह जो 'चला जाएगा' कहा न, वह शब्द मुझे पसंद आया। मैं ऐसा सोचता हूँ कि कितना सहज स्वभाव है, 'चला जाता है', इसमें?

दादाश्री : और जब तक 'चला न जाए' तब तक आपको 'देखते' रहना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : प्रयत्न नहीं करना है?

दादाश्री : नहीं, दखलंदाज़ी ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जब उसका योग्य समय आएगा तब चला जाएगा?

दादाश्री : अपने आप ही चला जाएगा। भले ही, लोग ऐसा कहना हो तो ऐसा कहेंगे वैसा कहना हो तो वैसा कहेंगे, लेकिन यदि हम बखेड़ा करेंगे तो सब दखल हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, आपने तो उस पेड़ के जड़ में वह दवाई डाल दी है न, इसलिए पत्ते वगैरह दिखाई देते हैं लेकिन सभी गिर रहे हैं न! अब तो धीरे-धीरे हमारे सभी तिजोरी में भरा हुआ माल खाली हो जाएगा।

दादाश्री : हाँ, अर्थात् तिजोरी तो सारे खाली ही हो जाएँगे न! हमारी मोक्ष में जाने की इच्छा हुई इसलिए यह संसार भाव चला गया, अपने आप ही चला गया। हमें यहाँ से मामा की पोल में जाना है, उस तरफ चले गए तो फिर हम टावर की तरफ नहीं जाएँगे, वह तय हो गया। यानी इस तरफ मोक्ष की ओर चले तो उन सब का त्याग ही हो गया, भाव त्याग ही रहा करता है। अर्थात् अपने आप चला जाना चाहिए। 'चला जाना' शब्द समझ में आया आपको?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : जब मूर्च्छा नहीं रहती तब भरा हुआ माल सब खाली हो जाता है। जब उसका समय आता है तब खत्म हो जाता है!

❖❖❖❖❖

[10]

‘सहज’ को देखने से, प्रकट होती है सहजता

करने से नहीं, देखने से होता है सहज

एक ही चीज़ कहने में आती है कि भाई, आत्मा तो सहज है, अब तू *पुद्‌गल* को सहज कर। अब, ‘सहज कैसे होगा?’ सहज को देखने से सहज हो जाएगा। ‘ज्ञानी’ को देखने से, उनकी सहज क्रियाओं को देखने से सहज हो जाएगा। तब कहे, ‘कॉलेज में नहीं सीख सकते?’ कॉलेज में नहीं आएगा क्योंकि उन प्रोफेसरों को भान ही नहीं है, तो कैसे आएगा? यह ज्ञान शब्द रूप नहीं है, यह तो सहज क्रिया है।

जैसे कि चोर के पास किसी बच्चे को रखा हो तो वह छः महीने में तो फर्स्ट क्लास चोर बन जाएगा और यदि बीस साल तक उसके (चोरी करने के) कॉलेज में पढ़ने जाएगा तो भी नहीं आएगा। इसी तरह यदि ज्ञानीपुरुष के पास रहेगा तो अपने आप ही सहजता उत्पन्न हो जाएगी।

अनादिकाल से अपार चंचलता उत्पन्न हो गई है। वह चंचलता धीरे-धीरे स्थिर होते-होते फिर सहजता उत्पन्न हो जाएगी। यदि मुझे कोई गाली दे रहा हो उस समय मेरी सहजता को देखकर आपके मन में ऐसा होता हो कि ‘ओहोहो!’ तो वैसा आपको तुरंत आ जाएगा। देखने से ही आ जाएगा। उसके बाद यदि आपको गाली दे तो भी सहजता आ जाएगी। वर्ना, लाख जन्मों में भी सीख ही नहीं पाएँगे। ज्ञानीपुरुष के पास रहने से ही सारे गुण प्रकट हुआ करते हैं, अपने आप, सहज रूप से प्रकट होते हैं।

अक्रम विज्ञान जो कहता है उसका भावार्थ भी इतना ही है कि सहज होता जाता है।

ज्ञानी की अनोखी साहजिकता

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी के पास पड़े रहो, ऐसा जो कहा है अर्थात् फिर यही सब देखना है न?

दादाश्री : हाँ, पूरे दिन उनकी सहजता देखने मिलती है। कैसी सहजता! कैसी निर्मल सहजता है! कितने निर्मल भाव हैं! अहंकार बगैर की दशा कैसी होती है, बुद्धि बगैर की दशा कैसी होती है, वह सब देखने मिलता है। अहंकार बगैर की दशा और बुद्धि बगैर की दशा, वे दोनों दशाएँ तो देखने को मिलती ही नहीं न! हर जगह तो बुद्धिशाली! वे ऐसे बात करेंगे न, तो भी नाक चढ़ी हुई होती है! सहज कुछ भी नहीं रहता। फोटो खींचे तब भी नाक चढ़ी होती है! जबकि फोटोग्राफर हमें देखें न, तो अगर उसे फोटो नहीं लेनी हो तो भी ले लेगा कि ये फोटो लेने जैसे (व्यक्ति) हैं! वे सहजता ढूँढते हैं। यदि चढ़ी हुई नाक दिखे तो फोटो सहज नहीं आता।

इसलिए जब हम किसी के साथ जाते हैं न, किसी के समूह में, वहाँ भी हमारा मुँह ऐसा चढ़ा हुआ नहीं दिखाई देता, तो वे लोग भी समझ जाते हैं कि नहीं, देयर इज़ समथिंग (कुछ तो है)! लोगों को देखना अच्छी तरह से आता है। खुद का रखना नहीं आता। खुद का चेहरा वीतराग रखना नहीं आता लेकिन सामने वाले का चेहरा वीतराग है, उसे देखना बहुत अच्छे से आता है, बहुत बारीकी पूर्वक। मुँह चढ़ा हुआ अच्छा नहीं दिखाई देता, नहीं? फोटो देखने पर भी पता चल जाता है कि यह मुँह चढ़ा हुआ है इसीलिए इन फोटोग्राफरों को असहज हुए व्यक्ति की फोटो लेना (अनुकूल) नहीं आता। वे सहजता देखते हैं। जबकि हमारे लिए तो खुश ही हैं। जैसे घूमेंगे वैसे वे खुश, क्योंकि सहज हैं। वे बहुत खुश हो जाते हैं। उन्हें सहजता चाहिए और वह यहाँ सहज ही मिल जाती है। जबकि औरों को तो कहना पड़ता है, कि ज़रा सीधा बैठना। फिर भी फोटो खींचवाते समय लोग असहजता में रहते हैं इसलिए उनकी फोटो सुंदर नहीं दिखती। सहज की फोटो सुंदर दिखती है। अच्छा कौन

सा दिखाई देता है? सहज! और उनमें (असहज लोगों में) अहंकार अंदर ही रहता है।

जब आप फोटो खींचते हो तब ऐसा कहते हो कि आप हाथ जोड़ो तो हम हाथ जोड़ते हैं, बस। मुझे और क्या? क्योंकि हमें मन में ऐसा नहीं रहता कि यह मेरा फोटो ले रहा है, वर्ना, विकृत हो जाएँगे। हम सहज में ही रहते हैं। बाहर चाहे कितने भी फोटो लेने के लिए आए तो भी वे फोटो वाले भी समझ जाते हैं कि दादा सहज में ही हैं। वे तुरंत ही बटन दबा देते हैं।

फोटो मूर्ति का, खुद अमूर्त में

प्रश्नकर्ता : फोटो लेते समय, आपको अंदर क्या रहता है? क्योंकि यह तो मेरी फोटो ले रहा है इसलिए जब आप ऐसे स्थिर रहते हैं, तब आपको अंदर में कैसा परिणाम रहता है? उस समय आपका उपयोग कैसा रहता है?

दादाश्री : कुछ लेना-देना नहीं। कुछ हुआ ही नहीं हो, ऐसा! उसे खींचने वाले को ऐसा न लगे, कि मेरा फोटो खराब दिखे ऐसा किया, इसलिए मैं उसके सामने देखता तो हूँ, उतना ही और थोड़ा हाथ जोड़ लेता हूँ। उसकी मेहनत व्यर्थ नहीं जानी चाहिए न! मेरे लिए तो सहज ही। यदि वह कहेगा, ऐसे बैठो, तो मैं वैसा बैठूँगा। वैसा भी करूँगा। जब आप सहज हो जाएँगे तब आपका भी फोटो लिया जाएगा। सहज होना चाहिए। फोटोग्राफर सहज को ढूँढता है। ये सभी सौ लोग बैठे हों उनमें सहज कौन है, उसे फोटोग्राफर ढूँढता है। वह ढूँढता ही है। फोटोग्राफर को उसका अनुभव रहता है। फोटोग्राफर समझ जाता है कि इन सभी में इनका फोटो लेना चाहिए, मैं अभी आपके साथ नीचे बैठूँगा और फिर फोटोग्राफर से कहूँगा कि इन सभी में से ढूँढ लो कि किसका फोटो खींचने जैसा है? तब कहेगा, इनका लेने जैसा है। वह स्थिरता देखता है। फोटोग्राफर हमेशा स्थिरता देखता है। कितनी स्थिरता और सहजता है, वह देखता है। आप सहजता समझ गए? आप भी ऐसे अकड़ जाते हो या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हो जाता हूँ। फिर मुझे कोई देख रहा है या नहीं, ऐसा सब तरफ देखता रहता हूँ।

दादाश्री : वैसा देखने में हर्ज नहीं है लेकिन वैसा हमेशा नहीं देखता। वह देखने का सहज भाव टूट जाता है।

प्रश्नकर्ता : फिर कहेगा, मेरा फोटो ले रहा है।

दादाश्री : हाँ, अर्थात् जिस व्यक्ति की फोटो ले रहे हो तब यदि वह सहज रहता हो न तो उसके फोटो बहुत अच्छे आते हैं।

प्रश्नकर्ता : ऐसा नियम है?

दादाश्री : सभी नियम ही हैं न। जगत्, सभी नियम से ही चलता है न!

प्रश्नकर्ता : फिर ऐसा भी कहते हैं, कि मेरा यह फोटो कितना सहज है! यह मेरा नैचुरल फोटो है!

दादाश्री : एक आदमी तो मुझसे कहने लगा, कि ऐसे तो डेढ़ डॉलर फीस लेता था और वहाँ पर ही फोटो तैयार करके तुरंत दे देता था। वह कहने लगा, मुझे इनका फोटो लेना है तो उसने तुरंत ही फोटो खींचकर मुझे दे दी और पैसे नहीं लिए! जिसे दादा की फोटो लेना हो वह अपनी ग़रज़ से लेता होगा, क्या! उसके बाद फोटो अच्छे आते हैं!

अब तो नीरू बहन भी फोटोग्राफर बन गए हैं न, कैमरा वगैरह लेकर!

प्रश्नकर्ता : तब आप कहते हो, फोटोग्राफर बन गए हैं, इसलिए फिर...

दादाश्री : ऐसा तो कहता हूँ, वे सभी बातें तो मज़ाक के लिए। वह थोड़ी-बहुत तो हँसी-मज़ाक चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : चाहिए।

दादाश्री : इन भाई के साथ कितना हँसी-मज़ाक करता हूँ! नहीं करता? आपको पता चलता है न कि ये मज़ाक करते हैं? थोड़ा-बहुत तो करना पड़ता है न? मज़ाक तो होती है न! हँसी-मज़ाक के बगैर दुनिया में किस तरह से अच्छा लगेगा? तेरे साथ नहीं करता?

इन्होंने दादाजी का छत्तीस घंटे का वीडियो बनाया, तो इन्हें फोटो लेने की कितनी इच्छा रही होगी? छत्तीस घंटें का वीडियो का मतलब वह फिल्म कितने घंटे चलेगी? हमें सिनेमा देखने के लिए चाहिए न? ऐसे बारह दिनों तक देखेंगे तब जाकर वह खत्म होगी! पूरे अमरीका में मेरे साथ घूमा, सभी जगह की वीडियो ली! छत्तीस घंटे की वीडियो अर्थात् बोलते-चलते सभी तरह की! कहते हैं, रोज़ देखते ही रहते हैं। यही देखते रहते हैं, हमें और क्या देखना है?

यहाँ अमरीका से वहाँ इन्डिया भिजवाने वाले हैं बारह घंटे की ऐसी सभी थोड़ी-थोड़ी लेकर। बहुत अच्छा कहलाएगा! लोग देखेंगे न!

ये सभी बातें हम सहज समाधि में करते हैं। हम पूरे दिन सहज रहते हैं क्योंकि हम इस देह के एक पल के लिए भी मालिक नहीं होते, इस वाणी के मालिक नहीं और इस मन के भी मालिक नहीं। शरीर का मालिकीपन छब्बीस वर्षों से चला गया और छब्बीस वर्षों से समाधि नहीं जाती, एक सेकन्ड के लिए भी। यदि हमें कोई चाटा मारे तो भी हमें समाधि रहती है, हम उसे आशीर्वाद देते हैं। यदि सहज समाधि देखनी हो तो हमारी यह प्रत्यक्ष समाधि देखना!

जहाँ नो लॉ लॉ, वहाँ सहजता

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी का अंतःकरण कैसे कार्य करता है?

दादाश्री : यदि 'खुद' हट जाए तो अंतःकरण से 'आत्मा' अलग ही है। यदि आत्मा अलग हो जाएगा तो संसार के कार्य अंतःकरण से चलते ही रहेंगे। अलग होने के बाद ज्ञानी का अंतःकरण खुद ही स्वाभाविक रूप से काम करता रहता है क्योंकि दखलंदाज़ी बंद हो गई न! इसलिए अंतःकरण का कार्य बहुत अच्छा चलता है

और जहाँ ज़रूरत पड़ती है वहाँ लोगों के लिए उपयोगी हो जाता है। आत्मा के अलग हो जाने पर संसार के सभी कार्य अंतःकरण से चलते रहते हैं, उसे ही सहज कहते हैं!

मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार हाज़िर ही रहते हैं, उससे संपूर्ण रूप से जागृति रहती है, वीतराग ही रहते हैं।

हमारा सब सहज होता है इसलिए सहजता पर जाना है। यह सहजता का मार्ग 'नो लॉ लॉ,' सहजता पर ले जाने के लिए है। यदि लॉ (नियम) होगा तो सहजता कैसे होगी? अभी मैं यहाँ बैठा हूँ, ऐसे नहीं बैठेगा। ऐसा कुछ आया हो न तो स्पर्श नहीं करेगा। उन सभी बातों में साहजिकता नहीं है। साहजिक अर्थात् जैसे अनुकूल आए वैसे रहे। दूसरे विचार ही नहीं आए कि ये लोग मुझे क्या कहेंगे और ऐसा-वैसा कुछ भी नहीं रहता।

सहजता, ज्ञानी की

प्रश्नकर्ता : दादा सभी को जो प्रसादी देते हैं न, जूते से वह...

दादाश्री : वह सब सहज भाव से। सहज भाव अर्थात् 'मैं मारता हूँ' वह भान नहीं रहता, 'मैं मारता हूँ' वह ज्ञान नहीं रहता और 'मैं मारता हूँ' वह श्रद्धा नहीं रहती, उसे सहज भाव कहते हैं। हम सहज भाव से मारते हैं, इसलिए किसी को दुःख नहीं लगता!

प्रश्नकर्ता : सहज भाव से चाटा मारना, वह ज्ञानी के अलावा और कोई मार सकेगा क्या?

दादाश्री : हाँ, यदि सहज भाव होगा तो मार सकेगा।

प्रश्नकर्ता : यदि ज्ञानी के अलावा कोई और चाटा मारेगा तो सामने वाले को दुःख हुए बगैर रहेगा ही नहीं।

दादाश्री : यदि दुःख होता है तो फिर वह सहजता नहीं है। उसमें कुछ गलत है, वर्ना, दुःख होना ही नहीं चाहिए।

यह हमारी सारी क्रिया सहज होती हैं, ड्रामेटिक। वह हो गई फिर कुछ नहीं। लेना भी नहीं और देना भी नहीं। आज कौन सा वार है उसका भी पता नहीं। आप कहते हो कि यह वार हुआ तो हम 'हाँ' कहेंगे और आप भूल से हम से ऐसा कहने का कहो कि आज बुधवार हुआ, तो हम भी बुधवार ही कहेंगे। हमारा ऐसा नहीं लेकिन सहज भाव।

हम अमरीका गए, वहाँ पोटली के जैसे गए और पोटली के जैसे आ गए। अमरीका में सभी जगह गए, वहाँ भी ऐसा और सभी जगह ऐसा ही। हमारा कुछ नहीं। '*विचरे उदय प्रयोग, अपूर्व वाणी परम श्रुत!*' उसके जैसा।

जहाँ पोतापणुं नहीं वहाँ निरंतर सहज

हमारी यह साहजिकता कहलाती है। साहजिकता में कोई हर्ज नहीं। किसी प्रकार की दखल ही नहीं। आप ऐसा कहो तो ऐसा और वैसा कहो तो वैसा। *पोतापणुं* (मेरापन) ही नहीं न! और आप थोड़ा सा *पोतापणुं* छोड़ दो ऐसे हो? हमें तो ऐसा कहें कि 'गाड़ी में जाना है' तो वैसा। फिर वापस वे कल कहेंगे कि 'यहाँ जाना है' तो वैसा। 'नहीं' ऐसा नहीं। हमें कुछ हर्ज ही नहीं। हमारा खुद का मत ही नहीं रहता, उसे ही साहजिकपना कहते हैं। परायों के मत से चलना, वह साहजिकपना है।

हम ऐसे दिखने में हैं तो भोले, लेकिन बहुत पक्के हैं। बालक जैसे दिखते हैं लेकिन पक्के होते हैं। किसी के साथ हम बैठे नहीं रहते, चलने ही लगते हैं। हम अपना 'प्रोग्रेस' कैसे छोड़ दें?

हम में साहजिकता ही रहती है, निरंतर साहजिकता ही रहती है। एक क्षण के लिए भी साहजिकता से बाहर नहीं जाते। उसमें हमारा *पोतापणुं* नहीं रहता, इसलिए जैसे कुदरत रखती है वैसे रहते हैं। जब तक *पोतापणुं* नहीं छूटेगा तब तक सहज कैसे हो सकेंगे? जब तक *पोतापणुं* रहेगा तब तक सहज किस तरह से होंगे? यदि *पोतापणुं* को छोड़ दोगे तो सहज हो जाओगे। सहज होने पर उपयोग में रह सकते हैं।

जब तक हम में साहजिकता होती है तब तक हमें प्रतिक्रमण नहीं करना पड़ता। साहजिकता में आपको भी प्रतिक्रमण नहीं करना पड़ता। यदि साहजिकता में फर्क हुआ तो प्रतिक्रमण करना पड़ता है। हमें तो, आप जब देखोगे तब साहजिकता में ही देखोगे। जब देखो तब हम अपने उसी स्वभाव में ही दिखाई देंगे। हमारी साहजिकता में फर्क नहीं पड़ता!

ज्ञानी का सहज शुभ व्यवहार

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी का व्यवहार सहज होता है लेकिन उसके परिणाम में सारा व्यवहार शुभ ही होता है?

दादाश्री : शुभ व्यवहार तो अज्ञानी और ज्ञानी, दोनों कर सकते हैं क्योंकि ज्ञानी को शुभ व्यवहार करना नहीं रहता, अपने आप हो जाता है। जबकि अज्ञानी तो करता है। अहंकार है न, इसलिए शुभ व्यवहार करता है। अर्थात् अगर आप उनसे कहो कि आप हमारा नुकसान कर रहे हो। मुझेबा आपके साथ काम नहीं करना है, तो वह भाई क्या कहेगा? यदि नुकसान हो गया हो तो भूल जाओ लेकिन अब नए सिरे से अपना अच्छा काम करो न! अर्थात् हमने अशुभ किया, लेकिन वह शुभ करता है। जहाँ चिढ़ना हो वहाँ पर चिढ़ता नहीं बल्कि उल्टा हमें मोड़ लेता है। अभी तक जो कुछ भी हुआ उसे भूल जाओ और नये सिरे से मानो कि कुछ हुआ ही न हो, कुछ गुनाह ही नहीं हुआ हो, ऐसा भूला देता है न? तब गाड़ी आगे चलती है वर्ना, गाड़ी डिरेल होकर खड़ी रह जाएँगी। जो डिरेलमेन्ट हो चुके हैं उन्हें देखा है आपने? अर्थात् शुभ व्यवहार अज्ञानी और ज्ञानी दोनों कर सकते हैं। ज्ञानी का सहज भाव से होता है, अज्ञानी को करना पड़ता है।

ज्ञानी की विलक्षणता

ज्ञानीपुरुष किसे कहते हैं कि जिन्हें त्याग या अत्याग संभव नहीं होता, सहज भाव से होता है। वे राग-द्वेष नहीं करते। उनमें सिर्फ, विशेष विलक्षणता क्या होती है कि राग-द्वेष नहीं होता। इतनी ही विलक्षणता होती है। दूसरी कोई विलक्षणता नहीं होती!

योगी और ज्ञानी में अंतर

प्रश्नकर्ता : योगी भी ज्ञानी के जैसे सहज रहते हैं, क्या?

दादाश्री : वे योगी हैं लेकिन ज्ञानी नहीं न! ज्ञानी को ऐसा वैसा नहीं रहता न! ज्ञानी को सब सहज रहता है। ओढ़ाओगे तो ओढ़कर बैठेंगे और यदि स्त्री के कपड़े पहनाओगे तो स्त्री के कपड़े भी पहनेंगे और यदि नग्न कर दोगे तो नग्न ही घूमेंगे। अर्थात् योगी में और ज्ञानी में तो बहुत अंतर होता है। ज्ञानी निर्भय रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् योगी में अहंकार होता है?

दादाश्री : अहंकार के बिना तो इस जमीन पर सो सकते हैं, ऐसा सब होता ही नहीं न! सहज, क्या चीज़ है कि जमीन आई तो जमीन पर, गद्दा आया तो गद्दे पर, यदि आप कहो कि नहीं दादा, इन तीन गद्दों के ऊपर आप सो जाओ तो हम मना नहीं करेंगे। यह सापेक्ष चीज़ है कि जिसमें मोक्ष जाते-जाते ऐसे सब स्टेशन आते हैं। इसलिए कुछ छोड़ने जैसा नहीं है क्योंकि मूल स्टेशन को जानने के बाद यह छोड़ने जैसा नहीं है। यह गलत नहीं है लेकिन अभी तो इससे बहुत आगे जाना है। यह कोई अंतिम स्टेशन नहीं है। जैसे कि कोई मानेगा कि सूरत, वह बॉम्बे सेन्ट्रल है, ऐसे मानकर वह सूरत में खड़ा रहकर बात करेगा, ऐसी यह बात है।

ज्ञानी के ज्ञान से छुटकारा

प्रश्नकर्ता : योगियों को ये सब चक्र सिद्ध हो जाते हैं, उसके बाद चित्त बाहर भटकने जाता है, क्या?

दादाश्री : चित्त का भटकना कब बंद होता है? यदि ज्ञानी के पास से ज्ञान लेकर ज्ञानी की आज्ञा का पालन करें तो चित्त का भटकना बंद हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : इसका अर्थ ऐसा हुआ कि जब तक वे 'ज्ञानीपुरुष' के पास नहीं आते तब तक उनकी चित्तवृत्ति कभी भी वापस नहीं आएगी?

दादाश्री : जब तक 'ज्ञानी' नहीं मिलेंगे तब तक कुछ नहीं बदलेगा। यह सब माथापच्ची की, वह बेकार है। जब तक 'ज्ञानीपुरुष' नहीं मिलेंगे तब तक भूखे बैठे रह सकते हैं क्या? यदि कंट्रोल के गेहूँ मिले तो उसे खाना। जो गुरु मिला उसी गुरु के पास बैठना। ऐसे भूखे नहीं रह सकते। बाकी, यदि ज्ञानी मिलेंगे तो छुटकारा होगा। उसके अलावा चाहे कहीं भी जाओ लेकिन छुटकारे का रास्ता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : पतंजलि ने योग की व्याख्या में कहा है कि योग अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध और आप ऐसा कहते हो कि वे फिर अपने आप वापस आती है। उसमें प्रयत्न है और इसमें प्रयत्न नहीं है।

दादाश्री : हाँ, उसमें तो निरोध करने का प्रयत्न करना है जबकि इसमें तो सहज ही आती है, वापस आती है। पहले जो चित्तवृत्तियाँ बाहर भटकती रहती थीं वे सभी वापस आती हैं। जाती तो हैं लेकिन जाने के बाद फिर वापस आ जाती हैं। अपने आप नहीं आती? हमें हाँकने नहीं जाना पड़ता। जबकि उसमें तो हाँकने जाएँगे या बुलाने जाएँगे तो भी वापस नहीं आती।

अहंकार रहित ज्ञानी

प्रश्नकर्ता : ज्ञानीपुरुष को दुःख का अनुभव होता है, क्या?

दादाश्री : ज्ञानी होम डिपार्टमेन्ट (आत्मा) में ही रहते हैं इसलिए दुःख का अनुभव नहीं होता। वे मोक्ष स्वरूप ही रहते हैं। वे फॉरेन (अनात्मा) में घुसते ही नहीं। उनका फॉरेन के साथ व्यवहार ही नहीं रहता। जिनका सचल व्यवहार बंद हो गया है। सचल हैं, फिर भी सचल साहजिक रूप से चलता रहता है। जिनकी सभी अवस्थाएँ साहजिक हैं, खाना, पीना, बैठना और उठना, सभी सहज हैं। जिनमें अहंकार की ज़रूरत नहीं पड़ती, ऐसे सहज हैं।

प्रश्नकर्ता : अगर शरीर में वेदना हुई हो तो ज्ञानीपुरुष भी चीख-पुकार करते हैं?

दादाश्री : ज्ञानीपुरुष चीख-पुकार नहीं करते, शरीर चीख-पुकार

करता है और अगर शरीर अगर चीख-पुकार नहीं करेगा तो वे ज्ञानी नहीं होंगे। दूसरे लोग समझ जाएँगे इसलिए अज्ञानी अहंकार करके दबाता है।

प्रश्नकर्ता : उसके अहंकार से दबाता है?

दादाश्री : अहंकार से सबकुछ बंद हो जाता है। अहंकार तो बहुत काम करता है। जिनका अहंकार चला गया, वे ज्ञानी। इनसे (नीरू बहन से) पूछो तो सही कि इन्जेक्शन देते समय हमें क्या होता है? उस भाग को शून्य करना पड़ता है? बेहोश। अहंकार चला गया इसीलिए। वर्ना, जब मेरा अहंकार था न तब तो मैंने एक माचिस की तीली (दियासलाई) जलाई और उसके ऊपर मेरा अँगूठा रखा। मैंने कहा, यहाँ पर रखो। तब दो दियासलाई जलाई, दोनों जलती रही तब तक रहने दिया था। अहंकार क्या कुछ नहीं करता? अहंकार सबकुछ कर सकता है लेकिन यह सहजता नहीं कर सकती।

वेदना में देह सहज स्वभाव

जो पर-परिणाम हैं या जो डिस्चार्ज स्वरूप से हैं, उसमें वीतरागता रखने की ज़रूरत है। दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। वह तो जब भगवान महावीर के कान में कील ठोके थे न! तब खाली वीतरागता ही रखने की ज़रूरत थी और जब वे कीलें खींचकर निकाल ली उस समय भी वीतरागता ही। फिर भले ही देह का कुछ भी हुआ, देह ने चीख-पुकार की होगी, उसे लोगों ने गलत माना। लेकिन ज्ञानी का देह तो हमेशा ही चीख-पुकार करता है, रोता है, सबकुछ करता है। यदि ज्ञानी का देह ऐसा स्थिर हो जाता हो, तो वे ज्ञानी नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : सब लोग तो ऐसा ही मानते हैं कि ज्ञानी को थोड़ा ऐसा कहें तो वे हिलते नहीं, टस से मस नहीं होते।

दादाश्री : लोगों को लौकिक ज्ञान है। संसार लौकिक के बाहर निकला ही नहीं है। यदि ऐसे बैठे और जलकर मर रहा हो तो लोग उसे ज्ञानी कहेंगे। लेकिन ज्ञानी को तो पता चल जाता है कि ये ज्ञानी

हैं, वे ऐसे हिल जाएँगे। जबकि अज्ञानी नहीं हिलते क्योंकि अज्ञानी तय करता है कि मुझे हिलना ही नहीं है। ज्ञानी में तो अहंकार ही नहीं होता और वे सहज होते हैं।

सहज उसे कहते हैं कि जैसा शरीर का स्वभाव है न, वह वैसा ही होता रहे ऊँचा-नीचा सब! शरीर ऊँचा-नीचा होता हो, वह सहज और आत्मा में पर-परिणाम नहीं, वह सहज। सहज आत्मा अर्थात् स्व-परिणाम और शरीर ऊँचा-नीचा होता है, वह अपने स्वभाव में ही उछल-कूद करता है, ऐसा। ऐसे दियासलाई जलती हो न, तो फिर नीचे फेंकने के बाद उसका छोर ऊँचा होता है। वह क्या है? वह सहज परिणाम है। देह के सभी परिणाम बदल जाते हैं। जबकि अज्ञानी के नहीं बदलते। यदि अज्ञानी ऐसे ही स्थिर हुआ तो वैसे का वैसा ही। अहंकार है न! और इन्हें अहंकार नहीं, इसलिए ये रोएँगे, सबकुछ करेंगे।

प्रश्नकर्ता : उस समय जब उनकी प्रकृति रोती है तब वे अंदर खुद के स्व-स्वरूप में स्थिर रहते हैं?

दादाश्री : ठीक है।

प्रश्नकर्ता : वे प्रकृति को कुछ भी कंट्रोल नहीं करते?

दादाश्री : प्रकृति, प्रकृति के भाव में ही रहती है। उसे कंट्रोल करने की आपको ज़रूरत नहीं है। अगर आप अपने सहज स्वभाव में आ गए तो यह सहज स्वभाव में ही है। यहाँ पर है न, यदि मुझे संगमरमर के पत्थर पर से चलकर जाना हो, जूते बगैर, तो मैं चीख-पुकार करूँगा, अरे जल गया, जल गया, जल गया, तो वे ज्ञानी हैं। वर्ना, यदि ऐसे दबा देंगे, बोलेंगे नहीं तो समझ जाना कि ये भाई अज्ञानी है। अभी पक्का करे और पक्का रखे। सहज अर्थात् क्या? जैसा है वैसा कह दे।

जिसे केवलज्ञान प्रकट हुआ हो न, उसका देह सहज होता है। दौड़ने के समय पर दौड़ता है, रोने के समय पर रोता है, हँसने के समय पर हँसता है।

तब कहते हैं, भगवान महावीर के कान में से कीलें निकाली, तो वे क्यों रो पड़े? अरे भाई, वे रो पड़े, उसमें तेरा क्या जाता है? वे तो रोते ही हैं। वे तो तीर्थंकर हैं। वे कोई अहंकारी नहीं हैं कि आँखों को ऐसे रखेंगे और वे ऐसे-वैसे करेंगे। जबकि अहंकारी होगा तो मुश्किल कर देगा।

महावीर भगवान एकदम बेहोश नहीं थे। जब उनके कान में से कीलें निकाली तब वे रोते भी थे, हँसते भी थे, सभी साहजिक क्रियाएँ होती हैं। ज्ञानी रोते भी हैं, हँसते भी हैं, सभी क्रियाएँ साहजिक होती हैं।

(भगवान महावीर के कान में) कील ठोकते समय करुणा के आँसू थे और निकालते समय वेदना के आँसू थे और वे आँसू आत्मा के नहीं थे। यह देह आँसू वाली थी। मैंने कहा, यदि आँसू नहीं आएँ तो हमें समझ जाना है कि यह पागल हो गया है या तो फिर यह भाई अहंकारी है, पागल है। सभी क्रियाएँ साहजिक होती हैं। जो ज्ञानी हैं, उनके शरीर में सभी क्रिया साहजिक होती हैं!

अब, यह बात लौकिक ज्ञान से बहुत अलग है इसलिए जल्दी समझ में नहीं आती! यह बात फिट नहीं होती न! यह अलौकिक बात है।

सहज आत्मा वह स्व-परिणामी

इसलिए कृपालुदेव ने कहा है कि ज्ञानीपुरुष को यदि सन्निपात हो जाए, लोगों को बहुत सारी गालियाँ देते हों तो भी तू अन्य कुछ नहीं देखना। इन बाह्य लक्षणों से उन्हें नहीं देखना। वे संयोगाधीन हैं। तू असंयोगी को देखना, वे तो वही के वही हैं। कृपालुदेव ने बहुत सारी बातों में सावधान किया है।

प्रश्नकर्ता : यह बात बहुत सूक्ष्म है, महावीर भगवान को कील ठोकी और यदि वे रोएँ नहीं तो वह अहंकार है।

दादाश्री : हाँ, जबकि भगवान ने तो कील निकालते समय ही ओ... ओ... करके चीख-पुकार की तब सच्चे पुरुष को जाना कि ये

तो सचमुच भगवान ही हैं। सहज में हैं, साहजिक हैं जबकि अहंकारी साहजिकता में नहीं रहते।

प्रश्नकर्ता : उन्हें दु:ख होता हो फिर भी दु:ख का असर वे नहीं होने देते, खास रूप से दिखने नहीं देते।

दादाश्री : वह अहंकार है न! अहंकार तो क्या नहीं करता, वहाँ? अहंकार, वह तो बहुत शक्ति वाला है। प्रकट नहीं होने देता कि मुझे दु:ख था। महावीर को ऐसा नहीं था वे तो सहज स्वभाव में थे। उनके मन में ऐसा नहीं रहता कि यदि अभी मैं रोऊँगा तो इन लोगों को यह मेरा ज्ञान गलत लगेगा। भले ही गलत लगे, वे तो सहजता में ही रहते हैं।

शरीर ऊँचा-नीचा होता है, यदि कोई जलाए तो हिल जाता है, वह सब देह का सहज स्वभाव है और आत्मा पर-परिणाम में नहीं, वह सहज आत्मा है। सहज आत्मा अर्थात् स्व-परिणाम।

जो वेदना में स्थिर, वह अहंकारी

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहा जाता है कि जब गजसुकुमार के सिर पर मोक्ष की पगड़ी बाँधी, तो उस समय गजसुकुमार आत्मा की रमणता में थे, अर्थात् उन पर उस पगड़ी का असर नहीं हुआ?

दादाश्री : यदि पगड़ी का असर नहीं हुआ होता तो मोक्ष नहीं होता। उस पगड़ी का असर हुआ। सिर जल रहा था उसे देखते रहे। उसमें ऐसी समता रखी कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ, यह अलग है' वैसा देखा, लेकिन उन्हें जो समता रही वही मोक्ष है। भीतर जलन हो, सबकुछ पता चले, यदि पता नहीं चले तो वह बेहोशी है।

कितने लोग ऐसे होते हैं कि इस तरह जलकर मर जाते हैं! तो लोग आकर मुझसे कहते हैं कि ये तो ज़रा भी हिले नहीं? मैंने कहा, अहंकार का कंकड़ है। ज्ञानीपुरुष तो यदि हाथ जलता हो तो भी रोते होते हैं, सबकुछ करते हैं। यदि वे रोते नहीं हो तो वे ज्ञानी ही नहीं

हैं। उनमें सहज भाव होता है। ये तो अहंकार के कंकड़ हैं। ऐसे कंकड़ डालो तो भी कुछ नहीं होता। वे किसी को पता नहीं चलने देते, ऐसे लोग होते हैं। ऐसा सब नहीं चलेगा। ऐसा फोकट का इलाज नहीं चलेगा। ये दादा आए हैं। हाँ, अभी तक चला। यह तो जैसा है वैसा ही कहना है। अभी तक तो नकली पैसा निकलवाया होगा वही चला होगा लेकिन अब, यहाँ पर नहीं चलेगा।

देखना है मात्र एक पुद्गल को ही

प्रश्नकर्ता : दादा ने कहा है, 'तेरी ही किताब पढ़ा कर, दूसरी किताब पढ़ने जैसी नहीं है। यह खुद की जो *पुद्गल* (जो पुरण और गलन होता है) की किताब है, मन-वचन-काया की उसे ही पढ़, दूसरी पढ़ने जैसी नहीं है।'

दादाश्री : इसे पढ़ना सरल नहीं है, वह तो वीरों का काम है। सरल होने के बावजूद सरल नहीं हैं। कठिन होने के बावजूद भी सरल हैं। हम तो निरंतर इसी ज्ञान में रहते हैं, लेकिन भगवान महावीर के जैसे नहीं रह पाते। उनके जैसे तो वीर ही रह सकते हैं! हम में तो चार अंश (डिग्री) की कमी है। वहाँ पर तो उतना भी नहीं चलता! लेकिन दृष्टि तो वहीं की वहीं रहने वाली है।

तीर्थंकर भगवान निरंतर खुद के ज्ञान में ही रहते हैं। उनका परिणाम ज्ञानमय ही था। वे ज्ञान में कैसे रहते होंगे? जो पुरुष केवलज्ञान की सत्ता पर बैठे हों, उन्हें ऐसा कौन सा ज्ञान बाकी रहता होगा कि जिससे उन्हें उसमें रहना पड़ता है? तब कहे, वे खुद के *पुद्गल* में ही दृष्टि रखकर देखा करते हैं।

भगवान महावीर देखते ही रहते थे कि ये क्या करते हैं, और क्या नहीं! जब देवताओं ने खटमल के द्वारा उपद्रव किया, तो वे ऐसे करवट लेते और वैसे करवट लेते। उन्हें, वे खुद देखते थे। 'महावीर' ऐसे करवटें लेते हैं, वह शरीर का स्वभाव है (महावीर हो या कोई भी हो) सिर्फ अहंकारी लोग ही कुछ भी कर सकते हैं। खटमल तो

क्या लेकिन जलाने पर भी वे हिलते नहीं क्योंकि उनकी पूरी आत्मशक्ति इसी में है। हाँ, उन्होंने ऐसा निश्चित किया है कि कुछ भी हो जाए, लेकिन हिलना ही नहीं है लेकिन देखो, आत्मशक्ति कितनी! जबकि ये तो सहज भावी, केवलज्ञानी और सभी ज्ञानी सहज भावी रहते हैं। वे रोते भी हैं, आँख में से पानी भी निकलता है, चीख-पुकार भी करते हैं। खटमल काटते हैं न, तो वे करवट बदलते हैं। ऐसे पलटते और वैसे पलटते। उन सब को वे देखा करते। पहले कर्म खपाने में गया। फिर देखने में गया, निरंतर देखते रहे। एक ही *पुद्गल* में दृष्टि रखते। सभी *पुद्गल* का जो है, वह एक *पुद्गल* में है। खुद के *पुद्गल* को ही देखना है कि जो विलय हो जाता है!

'ज्ञान' देना वह पुरुषार्थ

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी और तीर्थंकर के पुरुषार्थ में क्या अंतर रहता है?

दादाश्री : पूर्ण हो जाने के बाद कोई पुरुषार्थ नहीं रहता। फिर बिल्कुल सहज भाव। और पुरुषार्थ क्या है? ज्ञान होने के बावजूद भी असहज!

प्रश्नकर्ता : ज्ञान होने के बावजूद भी असहज?

दादाश्री : असहज।

प्रश्नकर्ता : तो ज्ञानीपुरुष को उसका बंध पड़ता है क्या? उस बंध को उन्हें भुगतना पड़ता है?

दादाश्री : हाँ, सामने वाले के कल्याण के लिए। उसका फल तो आएगा ही न। लेकिन वह फल बहुत उच्च प्रकार का आता है। वह ज्ञानावरण को हटा दे ऐसा फल आता है। जो थोड़ा-बहुत बाकी हो चार डिग्री का, उसके बाद दो डिग्री हटा देता है। उसके बाद एक डिग्री हटा देता है। अर्थात् यह जो 'ज्ञान देना' है, वह तो पुरुषार्थ है। वह प्रकृति नहीं है, वह पुरुषार्थ है। अर्थात् हमारा ज़्यादातर पुरुषार्थ रहता है।

❖❖❖❖❖

[11]

विज्ञान से पूर्णता की राह पर

प्रकट होता है आत्मऐश्वर्य, सहजपने में से

सहज अर्थात् क्या? जैसा कि पानी जहाँ ले जाए वहाँ जाए। पानी फिर इधर चला तो इधर चला जाए, *पोतापणुं* नहीं। पानी जहाँ ले जाए वहाँ खुद चले जाए ऐसा।

यदि एक मिनट भी सहज हो गया तो उतना वह भगवान के पद में आ गया। संसार में कोई सहज हो ही नहीं सकता न! एक मिनट के लिए भी नहीं हो सकता। सहज तो, आप इस अक्रम विज्ञान से हुए हो! नहीं तो वकालत करते-करते सहज होता होगा? क्या वे वकील सहज होते होंगे? फिर केस लेकर बैठते हैं न? लेकिन देखो सहज हो गए न! यह भी आश्चर्य है न! यह सब से बड़ा चमत्कार कहलाता है। फिर भी हम ऐसा कहते हैं कि चमत्कार जैसी कोई चीज़ नहीं है। लोगों को समझ में नहीं आने की वजह से, वे इसे चमत्कार कहते हैं। बाकी यह सब साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स हैं!

अभी तो, आपको यह जो विज्ञान दिया है, वह अब आपको निरंतर सहज ही कर रहा है और यदि सहज हो गए तो मेरे जैसे हो जाओगे। मेरे जैसे हो गए अर्थात् ब्रह्मांड के ऊपरी कहलाओगे। दादा भगवान को ब्रह्मांड के ऊपरी कहा जाता है। उसका क्या कारण है कि वे इस देह के मालिक नहीं हैं। अर्थात् इस देह का मालिक कौन है? तब कहे कि यह पब्लिक ट्रस्ट है।

जब से ज्ञान दिया तब से सहजता बढ़ती जाती है जबकि वह

(असहजता) कम होती जाती है। इन सब का मूल सार क्या है? अंतिम स्टेशन कौन सा है? तब कहे, व्यवहार आत्मा सहज स्थिति में और देह भी सहज स्थिति में, वही अंतिम स्टेशन। दोनों अपने-अपने सहज स्वभाव में।

अब जो निश्चय आत्मा है वह सहज है, तो यदि व्यवहार को सहज करोगे तो दोनों एक हो जाओगे। फिर हमेशा के लिए परमात्मा बन जाओगे।

प्रश्नकर्ता : वैसी सहजता की कल्पना करना मुश्किल है।

दादाश्री : हाँ, वह कल्पना, वैसी कल्पना तो नहीं होती न! कल्पना में वह नहीं आता न! कल्पना का दायरा उसका सरकमफरेन्स (परिधि) एरिया इतना छोटा रहता है, जबकि उसका तो बहुत बड़ा एरिया रहता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने सभी को थोड़ा-थोड़ा, हर एक की शक्ति के अनुसार आत्मा का ऐश्वर्य बता दिया है।

दादाश्री : कितना बड़ा ऐश्वर्य बताया है! देखो न, चेहरे पर कितना आनंद है, नहीं तो अरंडी का तेल चुपड़ा हो, ऐसा दिखाई देता है!

जो सहज हुए हो उनका एक ही वाक्य लोगों के लिए बहुत हितकारी होता है! सहज कोई हुआ ही नहीं है न! सहजता का उपाय सिर्फ अपने यहाँ ही है। अब जितना सुधर जाएगा, सीधा हो जाएगा, उतना सही। सीधा हो गया तो सहज हो गया।

सहजात्म स्वरूपी हैं 'ये' ज्ञानी

आत्मा तो सहज ही है, स्वभाव से ही सहज है, देह को सहज करना है। अर्थात् उसके परिणाम में दखल नहीं करना है। उसकी जो इफेक्ट है उसमें किसी भी प्रकार का दखल नहीं करना, उसे सहज कहा जाता है। परिणाम के अनुसार ही चलते रहे। दखल करना, वह

भ्रांति है। दखल करने वाला व्यक्ति मन में ऐसा मानता है कि 'मैं कुछ करता हूँ'। 'मैं कुछ करता हूँ' वह भ्रांति है।

'यह मुझसे होगा और यह मुझसे नहीं होगा, मुझे इसका त्याग करना है', तब तक सब अधूरा है। त्याग करने वाला अहंकारी होता है। 'यह मुझसे नहीं होगा,' ऐसा कहने वाला भी अहंकारी है, और 'यह हम से हो जाएगा' ऐसा कहने वाला भी अहंकारी है। यह सब अहंकार ही है।

जब तक व्यवहार में संपूर्ण रूप से तैयार नहीं हो जाते, तब तक संपूर्ण आत्मा प्राप्त नहीं होता। अर्थात् सहजात्म स्वरूप व्यवहार में, अर्थात् कि किसी का कोई आमने-सामने दखल ही नहीं। ऐसा होता है या ऐसा नहीं होता है, ऐसा कोई दखल नहीं। किसी में भी किसी प्रकार का दखल ही नहीं। सब अपने-अपने कार्य किए जाओ। कर्ता पुरुष जो कर रहा है, उसे ज्ञाता पुरुष निरंतर जाना ही करे। दोनों अपने-अपने कार्यों में रहे।

कृपालुदेव कहते हैं कि 'सहज स्वरूप से जीव की स्थिति होना, उसे श्री वीतराग मोक्ष कहते हैं'। उसी की प्राप्ति अपने महात्माओं को हो गई है। आपको भान तो हो गया है, *लक्ष* बैठ गया है। जो हो रहा है यदि उसमें दखल नहीं करो, तो वह सहज स्वरूप की स्थिति है। हमारी सहज स्वरूप ही हो गई है और आपको सहज स्वरूप होना है। लेकिन आपका वह *पुद्गल* बीच में आता है, उस *पुद्गल* को खपाना पड़ेगा। वैष्णव का वैष्णव *पुद्गल* रहता है, जैनों का जैन *पुद्गल* रहता है। उन सभी को खपाना पड़ेगा। यदि मेरे पास समझ लोगे तो खप जाएगा।

सहज स्वरूप की स्थिति होना अर्थात् *पुद्गल* अच्छा-बुरा है, उसे आपको नहीं देखना है। उसे अच्छा-बुरा मानने क्यों जाते हो? वह तो जो *पूरण* किया है वही *गलन* हो रहा है। आपको तो सिर्फ उसे जानने की ही ज़रूरत है।

आश्चर्यजनक कल्याणकारी 'यह' विज्ञान

अर्थात् यह आप में पूर्ण रूप से प्रकट हो चुका है, इसलिए सभी क्रियाएँ हो सकती हैं। संसार की और आत्मा की सभी क्रियाएँ हो सकती हैं। दोनों अपनी-अपनी क्रिया में रह सकते हैं वीतरागता से, संपूर्ण वीतरागता में रहकर! ऐसा यह अक्रम विज्ञान है!

देखो आश्चर्य, कितना आश्चर्य है! पूरे दस लाख वर्षों में यह सब से बड़ा आश्चर्य है! बहुत सारे लोगों का कल्याण कर दिया है!

❖❖❖❖❖

दादाश्री के आप्तवचन

ज्ञानी की आज्ञा सहज होती है। खुद को हेल्प फुल होती है, मदद करती है और रक्षा भी करती है।

अज्ञान को नहीं पढ़ना है, अज्ञान तो सहज भाव से आता ही है- ज्ञान को पढ़ना है।

ये स्त्रियाँ बोलती हैं, वह सहज प्रकृति है जबकि पुरुष सोच-समझकर बोलते हैं। सहज अर्थात् मूल स्वभाव। किसी को भी अड़चन नहीं हो, वह सहज प्रकृति है और विकृति अर्थात् विकृत प्रकृति। ये स्त्रियाँ जब बिफर जाती हैं तो बेहिसाब बोलती है, वह विकृत प्रकृति है।

स्त्रियों में अज्ञान सहजता होती है - दूसरी समझ पूर्वक की सहजता होती है और तीसरी ज्ञान सहजता है।

सहज भाव से निकली हुई प्रकृति सहज है। किसी और को नुकसान करे या किसी जीव को दु:ख हो जाए, उतनी ही प्रकृति मोक्ष के लिए बाधक है। अन्य चाहे जैसी भी प्रकृति हो, देर से उठना हुआ, जल्दी उठ गया, अमुक होता है, अमुक नहीं होता, ऐसी प्रकृति मोक्ष के लिए बाधक नहीं है।

बुद्धि द्वंद्व करने वाली है और इमोशनल करने वाली है, बुद्धि से ही जुदाई है, बुद्धि ही भेद कराने वाली है। बुद्धि से ज्ञान उत्पन्न होता है, लेकिन विज्ञान (आत्मज्ञान) उत्पन्न नहीं होता। विज्ञान तो सहज उत्पन्न होता है।

सहज स्वाभाविक बुद्धि हर एक में होती है लेकिन यदि स्पर्धा में पड़े तो बुद्धिशाली को भी बुद्धु बना देती है।

उपाय नहीं करना, वह भी अहंकार है और उपाय करने का प्रयत्न करना, वह भी अहंकार है। 'निरुपाय उपाय' होता है उसे होने देना। सहज रूप से उपाय होने देना। 'हमारा' सहजासहज उपाय हो जाता है।

जिसे खुद को कर्तापन का भान नहीं, वह साहजिक है।

विकल्पी स्वभाव वालों को तो खुद कुछ भी नहीं करना चाहिए। उसे तो किसी सहज व्यक्ति को ढूँढ निकालना चाहिए और वे जैसा कहे वैसा करना चाहिए!

यदि कुदरत के संचालन के अनुसार जीएँगे तो जीवन अच्छे से जी पाएँगे। भीतर से जो प्रेरणा होती है उसी अनुसार सहज भाव से रहना चाहिए, लेकिन दखल नहीं करना चाहिए।

लोग कहते हैं कि प्रयत्न किए बगैर कैसे होगा! अरे प्रयत्न करने का तो होता ही नहीं है। प्रयत्न तो सहज रूप से हो ही जाता है। जैसे साँप दिखते ही तुरंत कूद जाते हैं - वहाँ यदि आप प्रयत्न करने जाओगे तो साँप के ऊपर ही पैर आ जाएगा। प्रयत्न करने से तो संडास भी नहीं होता।

इस संसार में जितना सतही रहकर देखने में आता है उतना काम अच्छा होता है। उपलक अर्थात् साहजिक।

यह जगत् निरंतर हितकारी है, यदि सहज भाव से चलो तो जगत् आपको आगे ही ले जाने वाला है, लेकिन लोग स्वच्छंद से चलते हैं।

जिस सुख के लिए हमें कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता, किसी भी जगह पर सहज रूप से वह प्राप्त होता ही रहता है। निरंतर होता रहता है। दु:ख देखने में ही नहीं आता, उसे सनातन सुख कहते हैं!

सहज भाव से बोलने में हर्ज नहीं है लेकिन अभिप्राय नहीं देना।

जिसके लिए जितने अभिप्राय बंध गए, उतने अभिप्रायों को यदि हम छोड़ देंगे तो सहज हो जाएँगे। जिसके बारे में अभिप्राय बंध गए हो, वे हमें कचोटते ही रहते हैं और यदि उन अभिप्रायों को हम छोड़ देंगे तो सहज हो जाएँगे।

बातचीत में परिणाम ऊँचे-नीचे नहीं होने चाहिए। सहज भाव से बातचीत करो।

विचार करना, वह पाप है और विचार नहीं करना, वह भी पाप

है। विचार तो सहज रूप से आना चाहिए जैसे कि हमें कोई बुलाने आता है उसी प्रकार से विचारों को आने देना चाहिए।

यदि चारित्र मोह में दखल न करे तो प्रकृति सहज होती जाती है।

जब व्यवहार अहंकार संपूर्ण रूप से विलय हो जाए तभी सहज वाणी निकलती है।

मन-वचन-काया सहज स्वभाव से क्रियाकारी हैं। वे सबकुछ करते ही रहते हैं और सहज स्वभाव से आत्मा का ज्ञान-दर्शन क्रियाकारी है। यदि यहाँ पर ये सभी चीज़ें रखी हो तो आत्मा उन्हें सहज स्वभाव से देखता ही रहता है, जानता रहता है!

अभी तो 'कुछ नहीं करता,' वह भान है इसलिए आनंद थोड़ा कम होता है। जब सहज हो जाएगा तब सारा दिन आनंद और ही प्रकार का होगा! 'पहले कुछ करता था,' वह भान था उसके बाद अब 'नहीं करता' उसका भान है लेकिन 'मूल चीज़' दोनों से अलग है।

जो सहजता को तोड़ दें, वे सभी चालाकी हैं। चालाकी तो संसार में भी नुकसान करती है और अपार अपयश दिलवाती है।

जहाँ खुद 'प्लानिंग' नहीं करता, वह सब एकदम 'डिस्चार्ज' है। 'प्लानिंग' करता है, उसमें 'चार्ज' होता है। 'डिस्चार्ज' सहज स्वभावी है। उसमें दुःख नहीं होता।

जब विषय पर संपूर्ण रूप से कंट्रोल हो तब साहजिक होता है, वर्ना साहजिक नहीं होता।

जिसे कुछ भी नहीं चाहिए और किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं पड़ती, उसे सहज माना जाता है।

सहज समाधि, वह 'अंतिम' साध्य है।

❖❖❖❖❖

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

ऊपरी : बॉस, वरिष्ठ मालिक

लक्ष : जागृति

निकाल : निपटारा

पूरण-गलन : चार्ज-डिस्चार्ज होना, भरना-खाली होना

पुद्गल : जो पूरण और गलन होता है

डखोडखल : दखलंदाज़ी

अजंपा : बेचैनी, अशांति, घबराहट

उपाधि : बाहर से आने वाला दुःख, परेशानी

भोगवटा : सुख या दुःख का असर, भुगतना

पोतापणुं : मेरापन

❖❖❖❖❖

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : 9328661166/9328661177
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

दिल्ली	9810098564	**बेंगलूर**	9590979099
कोलकता	9830080820	**हैदराबाद**	9885058771
चेन्नई	7200740000	**पूणे**	7218473468
जयपुर	8890357990	**जलंधर**	9814063043
भोपाल	6354602399	**चंडीगढ़**	9780732237
इन्दौर	6354602400	**कानपुर**	9452525981
रायपुर	9329644433	**सांगली**	9423870798
पटना	7352723132	**भुवनेश्वर**	8763073111
अमरावती	9422915064	**वाराणसी**	9795228541

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 722 722 063

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 421127947

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 81129229

www.dadabhagwan.org



आज्ञा पालन करने से होते हैं सहज

यदि प्रकृति सहज हो जाए तो आत्मा सहज हो ही जाएगा। अगर आत्मा सहज करने का प्रयत्न हो तो प्रकृति सहज हो ही जाएगी। दोनों में से एक सहज की तरफ चला तो दोनों ही सहज हो जाएँगे।

इस काल में प्रकृति सहज हो सके, ऐसा नहीं है। इसलिए 'हम' सहज आत्मा दे देते हैं और साथ-साथ प्रकृति की सहजता का ज्ञान दे देते हैं। उसके बाद प्रकृति को सहज करना बाकी रहता है।

जैसे-जैसे ज्ञानीपुरुष की आज्ञा का पालन करते जाओगे वैसे-वैसे मन-वचन-काया सहज होते जाएँगे। प्रकृति सहज हो गई तब तो बाहर का भाग भगवान ही बन गया!

-दादाश्री

dadabhagwan.org

ISBN 978-93-87551-33-6
9 789387 551336
Printed in India
Price ₹50